अंग लोकसंस्कृति कोश

डॉ. अमरेन्द्र

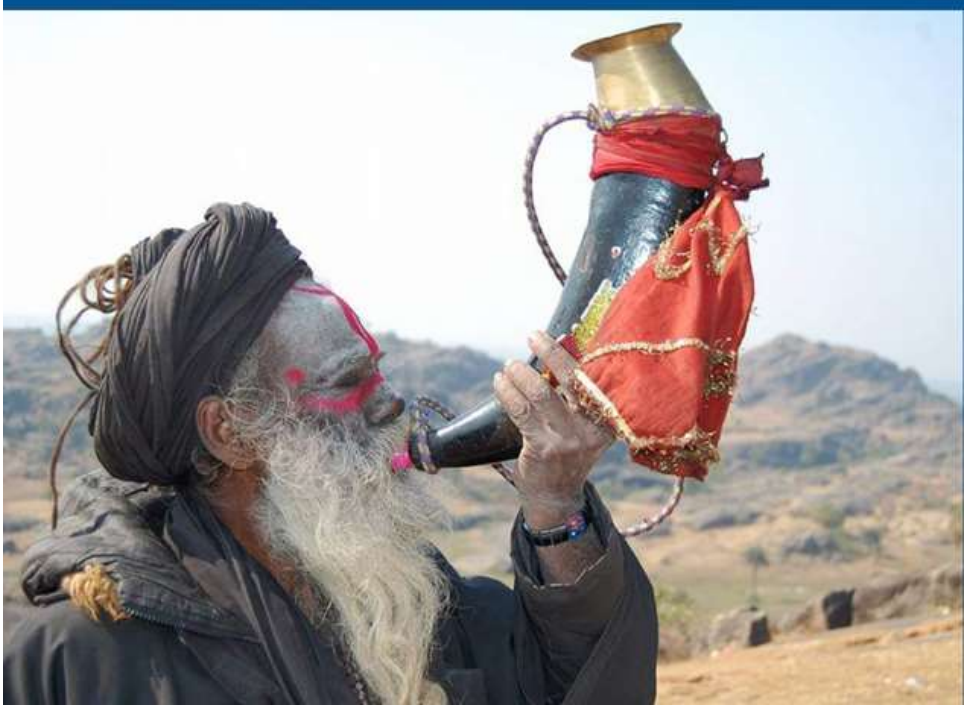

अंग-लोकसंस्कृति-कोश

अंग-लोकसंस्कृति-कोश

डॉ. अमरेन्द्र

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : ९७८.८१.८७८५५.६३.७

प्रथम संस्करण
२०२३

सर्वाधिकार ©
लेखकाधीन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)-८४२ ००१
फोन : ०९३४२७९९५७, ०९९०५२९२८०१
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www. samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर-२७, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-९२
फोन : ०९९११४७८६६८

शब्द-संयोजन
सतीश कुमार

आवरण छाया-चित्र
मनोज सिन्हा

मुद्रक
बी.के. ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
तीन सौ रूपये मात्र

Ang-Loksanskriti-Kosh
By Dr. Amrendra Rs.300/-

'हिरनी-बिरनी' उपन्यास की लेखिका

डॉ. मृदुला शुक्ला

और

'कुँवर विजयमल' उपन्यास की लेखिका

डॉ. आभा पूर्वे

के नाम

—अमरेन्द्र

अपनी बात

'अंगिका लोक साहित्य', पहले इसी नाम से पुस्तक लिखना शुरू किया था, फिर इसके कई अंश डॉ. सुरेश गौतम और डॉ. वीणा गौतम के संपादन में प्रकाशित विभिन्न कोशों में प्रकाशित होने के बाद इस पुस्तक का शीर्षक बदलने का मन तीन-चार वर्ष पूर्व ही बन गया था। इसका एक कारण यह भी था कि 'अंगिका लोकसाहित्य' के एक बड़े अंश 'अंगिका लोकवार्त्ता' के नाम से प्रकाशित करना जरूरी हो गया था। 'अंगिका लोकसाहित्य' के बचे शेष भाग में कुछ और विशेष जोड़कर अब पूर्व की संकल्पना 'अंग-लोकसंस्कृति-कोश' के नाम से आपके समक्ष है ।

एक पंक्ति में कहूँ, तो पुस्तक बीज का वृक्ष रूप है। पिछले तीन दशकों से निरंतर अंग की संस्कृति और इसके साहित्य को पढ़ने-जानने के क्रम में जो कुछ संग्रहित हो पाया, उसे पुस्तक का रूप दे दिया है। यह नहीं कि पहली बार ऐसा हो रहा है, डॉ. परमानंद पाण्डेय, श्री नरेश पाण्डेय चकोर, डॉ. तेजनारायण कुशवाहा, सच्चिदानंद श्रीस्नेही, डॉ. जनार्दन यादव, डॉ. रमेश मोहन शर्मा आत्मविश्वास, डॉ. प्रदीप प्रभात, रंजन कुमार, भगवान प्रलय, श्री हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ, डॉ. बह्मदेव कुमार, डॉ. स्मिता शिप्रा, शीतांशु अरुण, अनिरुद्ध प्रसाद विमल, डॉ. विद्या रानी, दिनेश तपन, डॉ. मीरा झा, डॉ. गायत्री प्रसाद, डॉ. प्रतिभा राजहंस, चंद्रप्रकाश जगप्रिय, डॉ. मृदुला शुक्ला, अंजनी कुमार शर्मा, डॉ. आभा पूर्वे

ने अंग-लोकसंस्कृति की खोज की दिशा को प्रशस्त ही नहीं, सुगम भी किया है। लेकिन अंग की लोकसंस्कृति तो लोक में ठहरी हुई है, इसी से मैंने न जाने कितने-कितने साहित्यकारों से सम्पर्क किया और उन्होंने मुझे निराश भी नहीं किया । न तो साहित्यकार प्रीतम विश्वकर्मा ने, और न अंगिका कवि त्रिलोकीनाथ दिवाकर ने। तो, इस पुस्तक को पूरा होना ही था और अब यह आपके समक्ष है।

तब कार्य कोई भी हो, कुछ तो खालीपन लिए ही रहता है ताकि फिर नये तरीके से कुछ नया किया जाय। अगर यह 'अंग-लोकसंस्कृति-कोश' आगे के कार्य में कुछ भी मदद कर सका, तो यही मेरे श्रम की सफलता होगी! वैसे लगता है, मुझे यहाँ रुकना-ठहरना नहीं है। रोज-रोज नई बातें सामने आ जाती हैं। कुछ दिन पहले ही कवयिती कश्मीरा सिंह ने पूछ लिया था—'सत्ती बोदी' में आये शब्द 'सौढ़ा' का क्या अर्थ है। उन्हें सिर्फ ठनका बता दिया, लेकिन सब कुछ नहीं बता सका कि ठनका के समय 'सौढ़ा-सौढ़ा' क्यों कहते हैं। लोक विश्वास है कि सौढ़ा के वृक्ष पर ठनके का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसा कहने के पीछे सुरक्षा का भाव होता है। ऐसे कई लोकविश्वास निहार रंजन, आशीष कुमार सिन्हा 'कासिद' के पास अलिखित पड़े हैं। उन्हें भी संकलित करने की जरूरत है। इस पुस्तक को जो रूप देना था, उसे पूरा करने में अगर मुझे समय मिल सका, तो पूरा करके ही रुकूँगा—कुछ नये नाम से। अभी मातृभाषा का ऋण तो एक अंश भी नहीं चुका पाया हूँ!

—अमरेन्द्र

वसंतोत्सव
८/३/२३

सम्पर्क : लाल खां दरगाह लेन,
सराय, भागलपुर, बिहार-८१२००२
मो. - ९९४५१३२३, ८३४०६५०६७९

विषय-क्रम

- अंग :: ११
- अंगिका :: १२
- अमुआ ब्याह :: १४
- असावरी देवी :: १४
- आल्हा-ऊदल :: १५
- उगरी :: १५
- उग्रतारा :: १६
- एकादशी :: १६
- ऐरावत :: १६
- कजंगल :: १७
- कठघोड़वा नाच :: १७
- कताने थान :: १७
- कन्दाहा :: १७
- करकंडु :: २०
- करमा-धरमा :: २२
- कहवी :: २२
- कारु खिरहरी :: २२
- काली मंदिर :: २३
- कासड़ी पहाड़ी :: २४
- कीचक :: २४
- कृष्णाराम :: २४
- केवल मलाह :: २६
- कोशी :: २७
- कोहवर :: २८
- कौआ हँकनी :: २८
- खटिक :: २८
- खेदन महाराज :: २९
- गंगमैना :: ३०
- गंगलदे :: ३०
- गढ़ी माई :: ३१
- गनीनाथ :: ३१
- गरीबन बाबा :: ३२
- गांगो देवी :: ३२
- गुवारीडीह :: ३३
- गुलाबबाग :: ३३
- गोछी घोंर :: ३३
- गोदना :: ३३
- गोपीचंद :: ३४
- घाघ :: ३५
- घाटो-घटेसर :: ३५
- घुघली :: ३६
- घोघन महाराज :: ३६
- चंदनवाला :: ३७
- चकेवा :: ३८
- चम्पा देवी :: ३९
- चिलका महाराज :: ३९
- चूहड़ :: ३९
- चैता :: ४०
- चौमासा :: ४०
- छठ :: ४१
- छेछन डोम :: ४१
- जँतसार :: ४२
- जनार :: ४२
- जयमंगल गढ़ :: ४२
- जलपा थान :: ४२
- जातरा :: ४३
- जातियावाहन :: ४४
- जीतिया पर्व :: ४४
- जुनौठ :: ४५
- जेठ रैयत :: ४५
- जेठौंस :: ४५
- जोगीरा :: ४६
- जोति पंजियार :: ४७
- झरनी :: ४८
- झिझिया :: ४८
- टोटका :: ४९
- टोना :: ५०
- डाक :: ५०
- डीहवार:: ५०
- डोमकच :: ५०
- तमाशा :: ५१
- तिखुर :: ५१
- तुलसी ब्याह :: ५१
- दशगात्र :: ५२
- दानो :: ५२
- देवलो नृत्य :: ५२
- धनतेरस :: ५३
- नचारी :: ५३
- नटुआ दयाल :: ५३
- नन्ही बिन्नी :: ५४
- नयका वनजरवा :: ५४
- नहछू :: ५५
- नहनौत :: ५६
- नारदी :: ५६

- निरवाही गीत :: ५६
- नेमाइन :: ५६
- नैना जोगन :: ५७
- नोता :: ५७
- पंचघान :: ५७
- पनचरही :: ५७
- पराती :: ५७
- पारण :: ५८
- पितरपक्ष :: ५८
- पिपरा मेला :: ५८
- पुरनदेवी :: ५८
- प्रेत :: ५८
- फगुआ :: ५९
- फरकिया :: ६०
- फैकड़ा :: ६०
- बटगमनी :: ६२
- बरहम बाबा :: ६२
- बहुरा :: ६२
- बाँसुरी देवी :: ६३
- बाघेसरी देवी :: ६४
- बाबा धर्मदास :: ६४
- बारहमासा :: ६५
- बारी :: ६६
- बिटलाहा :: ६६
- बिहुला :: ६७
- बोलबै :: ७०
- भगैत :: ७०
- भदरिया :: ७०
- भद्दरी :: ७१
- भरदुतिया :: ७१
- भाजा :: ७२
- मंजूषा कला :: ७२
- मटकोर :: ७३
- मनौन :: ७३
- मरचिरैया :: ७३
- महाजनक :: ७४
- महुआ घटवारिन :: ७५
- महा शिवरात्रि :- ७६
- महिषी :: ७६
- मालगुएडवे :: ७७
- मोती दाय :: ७७
- मौनी अमावस्या :: ७८
- रंगाढारी :: ७८
- रमखेलिया :: ७८
- राखी :: ७९
- राजा ढोलन सिंह :: ७९
- लचिका रानी :: ८०
- लहसन मालाकार :: ८१
- लाला महाराज :: ८१
- लालमैन बाबा :: ८१
- लोकेश्वरी देवी :: ८२
- लोढ़ियारी नृत्य :: ८२
- लोरिक :: ८३
- लोरी :: ८३
- विजयमल :: ८४
- विदापत नाच :: ८६
- विरहा :: ८७
- विषहरी :: ८७
- विसुरॉत :: ८७
- वृजाभार :: ८९
- व्रात्य :: ८९
- शीतला माय :: ९०
- श्रीपाल :: ९१
- सँकरात :: ९२
- सतैसा :: ९२
- समुखिया मेला :: ९३
- सरहुल :: ९३
- सरूप महाराज :: ९३
- सलहेस :: ९४
- सिमरिया मेला :: ९६
- सोनाय महाराज :: ९६
- सोसिया महाराज :: ९७
- सोहर :: ९८
- सोहराय :: ९८
- स्वांग :: ९९
- हरदीगढ़ :: ९९
- हरिमल :: ९९
- हरेबा-परेबा :: १००
- हिजला मेला :: १००
- हिरनी-बिरनी :: १००
- त्रिमुहान :: १०१

अंग लिपि में शबरी खंडकाव्य :: १०२

अंग-लोकसंस्कृति-कोश

अंग : मत्स्य पुराण अंग जनपद के संबंध में कहता है कि पराक्रमी सम्राट बली के पुत्र अंग के नाम पर इस महाजनपद का नाम ''अंग'' हुआ । (मत्स्य पुराण-४८/२५), जबकि बाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवान शंकर के क्रोध के कारण कामदेव के अंग का जहाँ दहन हुआ, वह क्षेत्र ''अंग'' कहलाया । (बाल्मीकि रामायण-१/३२) । इसी तरह बौद्ध ग्रंथ 'दीर्घनिकाय' से यह ज्ञात होता है कि शरीर की सुन्दरता के कारण इस महाजनपद के लोग अपने को अंग कहते थे । (बौद्धग्रन्थ ''दीर्घनिकाय'' टीका) ।

जो भी हो, इतना तो साफ है कि अंग जनपद की स्थापना मध्य ऋग्वेद काल के पूर्व में ही हो चुकी थी । (राधा कृष्ण चौधरी/हिस्ट्री ऑफ बिहार/१९५८ पृ० ३३०) । अथर्ववेद में तो अंग का स्पष्ट उल्लेख आया है—गन्धारिभ्यो मूजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः (अथर्ववेद-५/२२/१४) । प्राचीन और आधुनिक ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अंग महाजनपद अपने विस्तृत भूगोल को ही लेकर महाजनपद था । इन ग्रन्थों के अनुसार अंग जनपद पुराने भागलपुर और मुंगेर तक विस्तृत था । पूर्णिया की सीमा इसी महाजनपद के अन्तर्गत थी । गंगा का उत्तर वाला हिस्सा अंगुत्तराप/उत्तर अंग/कहलाता था । (पार्जीटर/जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल/१८९७, ९५)। कथासरित सागर-२५/३५, २६/११५, ८२/३-१६ के अध्ययन से पता चलता है कि अंग का प्रसिद्ध नगर ''विटंकपुर'' समुद्र के किनारे बसा था । जबकि शक्ति संगम तंत्र, सप्तम पटल से यही ज्ञात होता है कि अंग की सीमा बैजनाथ धाम/देवघर/से भुवनेश्वर

तक विस्तृत थी । इतिहासकार डॉ. त्रिवेदन ने लिखा है कि कलिंग भी अंग राज्य में सम्मिलित था और तंत्र भी अंग की सीमा एक शिव-मंदिर से दूसरे शिव-मंदिर तक बतलाता है । यह एक महाजनपद था । अंग में मानभूमि वीरभूम, मुर्शिदाबाद और संताल परगना-ये सभी इलाके सम्मिलित थे । (डॉ. देव सहाय त्रिवेद/प्राङ-मौर्य बिहार/पृ० ७१) ।

अगर हम विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आधुनिक इतिहासकारों की प्रमुख कृतियों का अध्ययन करें तो यह पूरी तरह स्पष्ट हो जायेगा कि यह अंग महाजनपद ही था जो विश्व के अधिकांश हिस्सों के साथ अपना सांस्कृतिक संबंध स्थापित कर चुका था । प्रसिद्ध इतिहासकार राधाकृष्ण चौधरी ने लिखा है कि भारत के पूरब के देशों में आर्य-उपनिवेश-काल में जो उपनिवेश कायम हुए, उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान चम्पा/अंग/उपनिवेश का है, जिसका नाम अंग जनपद के लोगों ने चम्पा नगरी के नाम पर रखा था । (राधा कृष्ण चौधरी/ हिस्ट्री ऑफ बिहार/ पृ. १५) । डॉ. रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' के पृ. २०६ में लिखा है हिन्द-चीन में समुद्र के किनारे चम्पा राज्य की स्थापना द्वितीय शती में हुई । यहाँ भी राज्य का चम्पा नाम इसलिए प्रचलित हुआ कि राज्य स्थापित करने वाले हिन्दू चम्पा (भागलपुर) से आये थे । इन सभी द्वीपों का नाम अंगद्वीप था । और ऐतरेय ब्राह्मण तो यहाँ तक कहता है कि राजा अंग ने समस्त पृथ्वी को जीत कर अश्वमेघ यज्ञ किया था—अंग समन्तं सर्वतः पृथ्वीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे इति (ऐतरेय ब्राह्मण-३६/८/२१)।

अंगिका : अंगिका अंगप्रदेश की भाषा है और आंगी इसकी लिपि। ध्यातव्य हो कि बौद्धकाल के प्रसिद्ध बौद्धग्रन्थ में जिन सोलह महा जनपदों का उल्लेख आया है, उसमें ''अंग'' सबसे प्रथम स्थान पर है। ध्यातव्य हो कि इस सूची में ''विदेह'' या ''मिथिला'' का नामोल्लेख तक नहीं है । (अंगुत्तरनिकाय, प्रथम भाग पृ. १६७ सं. भिक्षु जगदीश कश्यप) और बौद्धग्रन्थ ''ललितविस्तर'' में उल्लिखित ६४ लिपियों में अंगिका का स्थान चौथे स्थान पर है, जबकि विदेह जिसे मैथिली सिद्ध करने का प्रयास हुआ है, का स्थान चालीसवें पर उल्लिखित है ।

(ललित विस्तर, सं. पी. एल. वैद्य/पृ. ८८) ।

मंत्रों के युग में वैदिक साहित्य के सृजन में अंग का योगदान रहा है, जिससे स्पष्ट होता है कि अंगमहाक्षेत्र प्राचीनतम युग में साहित्यिकों का गढ़ था । उसी साहित्यिक और भाषिक भावभूमि पर आचार्य भरतमुनि (प्रथम शताब्दी ई.) ने अपने नाट्यशास्त्र में प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं की सात श्रेणियाँ कही हैं,

मागध्यवन्तिका प्राच्या शूरसेन्यर्द्ध मागधी ।
वाहलीका दक्षिणात्याच सप्तभाषाः प्रकीर्तिताः ।।

(नाट्यशास्त्र १८/३५-३६)

आचार्य पाणिनि ५०० ई.पू. ने अष्टाध्यायी में 'न प्राच्य भर्गायौधेयादिभ्यः' (सूत्र ४/१/१७८) में प्राच्या को भाषा का दर्जा दिया है । अष्टाध्यायी की काशिका वृत्ति के भाष्यकार आचार्य वामन/जयादित्य (सातवीं शती ई.) ने इनमें से एक प्राच्या के अन्तर्गत पांचाली, वैदर्भी, आंगी (अंगिका), बांगी और मागधी को प्रतिष्ठित किया है । भट्टोजिदीक्षित (१७वीं शताब्दी) ने भी अपने 'सिद्धांत कौमुदी' में प्राच्या के भीतर आंगी (अंगिका) का उल्लेख किया है, 'पांचाली वैदर्भी आङ्गीबाङ्गी मागधी एते प्राच्या । (सूत्र २७, पृ. ७१३)

(अंगिका भाषा का इतिहास, डॉ. तेजनारायण कुशवाहा पृ. १७)

इतिहास ग्रन्थों में अंग और अंगिका की इस स्पष्ट और ऐतिहासिक मौजूदगी के बावजूद भाषा-सर्वेक्षण के क्रम में अंगिका की उपेक्षा कर जार्ज ग्रियर्सन ने कितनी बड़ी भूल की है, इसे पं. वैद्यनाथ पाण्डेय और राधावल्लभ शर्मा के विचारों से भी समझ सकते हैं—''ग्रियर्सन का भाषा-सर्वेक्षण न सर्वथा निर्दोष था, न पूर्ण । उसकी अपनी सीमाएं थीं, जिसके कारण स्पष्ट हैं । ग्रियर्सन को तटस्थ वैज्ञानिक सम्पन्न कितने सहायक मिले होंगे, कहना कठिन है, ऐसी स्थिति में उनके भाषा के समस्त निष्कर्षों को स्वीकार कर चलना संभव नहीं ।'' (पं. वैद्यनाथ पाण्डेय/श्री राधावल्लभ शर्मा/अंगिका संस्कार गीत/बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना/पृ. १८) ।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भाषा-सर्वेक्षण में अंगदेश की भाषा 'अंगिका' की उपेक्षा की ओर संकेत किया है, और अंगिका पर विशेष अध्ययन

की जरूरत बताई है, यह भी लिखा है कि अंग और अंगिका का व्यक्तित्व इतने शीघ्र पूर्ण रूप से नष्ट नहीं किया जा सकता है (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, विचारधारा, पृ. ३०) । अपनी पुस्तक 'आज की समस्याएं' में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भागलपुर, मुंगेर और पूर्णिया की लोकभाषा को अंगिका स्वीकार किया है । डॉ० माहेश्वरी सिंह महेश ने अपनी कृति 'अंगिका भाषा और साहित्य' (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद/पटना) में तत्कालीन सम्पूर्ण भागलपुर प्रमंडल को, जिसके अन्तर्गत भागलपुर, मुंगेर, सहरसा, पूर्णिया और संताल परगना के जिले सम्मिलित हैं, अंगिका का क्षेत्र मानते हुए यह लिखा है इस जनपद में कुछ अन्य भाषा-भाषी भी बसे हुए हैं । और अंगिका के विद्वान साहित्यकार सुमन सूरो अपनी पुस्तक 'अंगिका भाषा आरो साहित्य' में लिखते हैं कि अंगिका भाषा सिर्फ पुराने भागलपुर प्रमंडल की ही भाषा नहीं है, यह बंगाल के मालदा जिले और बिहार की दूर पठारी क्षेत्रों में भी बोली जाती है ।

अमुआ ब्याह : विवाह का एक संस्कार-कर्म । अमुआ दो संज्ञाओं का मेल है—आम और महुआ। इस संस्कार के अवसर पर आम और महुआ के वृक्षों को एक रक्षासूत्र से बाँधा जाता है। यह विवाह-सूत्र में बंधने का सूचक है। लोक में आम का वृक्ष स्त्री रूप में और महुए का वृक्ष पुरुष के रूप में मान्य है। अंगप्रदेश में यह वैवाहिक रस्म सभी जातियों में प्रचलित नहीं मिलता।

असावरी देवी : पहाड़िया जनजाति की कुलदेवी। इतिहासकार डॉ. विनय प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि कहलगाँव के ओरियन गाँव की कासड़ी पहाड़ी की तराई में असावरी देवी का पिंड है, जो पहाड़िया जनजाति के गाँव में पड़ता है। कभी यह पहाडिया जनजाति की अवश्य कुलदेवी रही होगी लेकिन आजकल सभी हिन्दू इसकी पूजा करते मिल जाते हैं। चूँकि पिंड रूप में प्राप्त असावरी देवी के पुजारी भी बरय जाति के ही होते हैं, इसी से यह अनुमान लगाना कि बाँसुरी या

असावरी देवी अलग-अलग देवी नहीं, बल्कि एक ही ग्रामदेवी की दो संज्ञाएं हैं, गलत नहीं लगता।

आल्हा-ऊदल : डॉ. तेजनारायण कुशवाहा ने 'अंगिका साहित्य रौं इतिहास' में इन दो वीर सेनापतियों के बारे में लिखा है कि इनकी कथा उत्तर प्रदेश के यहोबा राजा परमाल से जुड़ी हुई है और परमाल की ही रानी मल्हान के संकेत पर इन दो सेनापतियों ने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं, जिनका वर्णन ही इस लोकगाथा में हुआ है ।

इस संबंध में मैंने किसी इतिहास पुस्तक में पढ़ा था कि चम्पकारण्य में आल्हा-ऊदल के किले का अवशेष आज भी विद्यमान है। यहाँ यह बता देना आवश्यक होगा कि चम्पकारण्य चम्पारण नहीं है। यह चम्पकारण्य इसलिए है कि चम्पा का चम्पावन इस विस्तृत भूप्रदेश तक फैला हुआ था । इसीसे मोतिहारी की लोकभाषा अंगिका से बहुत अधिक निकट है । यही सातेश्वर पहाड़ी के क्षेत्र में 'बावनगढ़ तिरपन बाजार' नाम से एक स्थल है, जहाँ प्राचीन किले का अवशेष विद्यमान है । यह इतिहास भी बताता है कि यह खंडहर आल्हा-ऊदल से जुड़ा हुआ है । इससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि अंगिका में आल्हा-ऊदल की जो लोकगाथा लोक में प्रचलित है, वह जगनिक-कवि का लिखा हुआ नहीं, बल्कि अंगप्रदेश के किसी लोककवि द्वारा लिखा गया गाथाकाव्य ही है, जो सम्पूर्ण रूप से अब प्राप्त नहीं, बस लोककंठ में इसके कुछ खंड शेष रह गये हैं । मैंने भागलपुर आकाशवाणी में एक कलाकार से आल्हा-उदल के कुछ अंश को सुना था, वीररस से भरा हुआ यह काव्य अंगिका लोकगाथाओं में अपना बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

उगरी : उगरी बढ़ई जाति के लोकदेव हैं, जिनका पूजा-विधान भी विशिष्ट ढंग का होता है । अंगिका के कवि प्रीतम विश्वकर्मा ने मुझे बताया कि पूजा के अवसर पर सिर्फ उगरी महाराज की पूजा ही नहीं होती, बल्कि इनके साथ, सोखा, आनंदी, माया और लोकदेवियों को भी

पूजा दी जाती है । इस अवसर पर परजात के पाँच कुँआरे लड़कों का चयन होता है, जो उपवास और भीगे वस्त्र में ही पूजा पर बैठते हैं, उनके आगे काँसे की थालियां होती हैं, जिसमें दूध के साथ गूड़ भी परोसा जाता है, जब लड़के एक साथ ही दुग्ध पान कर रहे होते हैं, तब सारी एभातिन स्त्रियां उगरी महाराज के गीत गाती हैं ।

उग्रतारा : महिषी में स्थित उग्रतारा की मूर्त्ति। इस मूर्त्ति के संबंध में एक धार्मिक मान्यता तो यही है कि सती के नेत्र का तारा गिरा था और यह मूर्त्ति उसी सती की है, जिसे उग्रतारा के नाम से धार्मिक जानते हैं, लेकिन इतिहास-ग्रंथों से इसका अनुमोदन नहीं होता है। इतिहासकार हवलदार निपाठी सहृदय ने भी लिखा है कि महायानी ही तिब्बत से होते हुए चीन गये और चीन की तांत्रिक साधना को लेकर वह भारत लौटे। इन महायानियों में एक वशिष्ठ नाम के भी तांत्रिक महायानी थे, उन्होंने ही इस उग्रतारा देवी को चीन से लाकर यहाँ स्थापित किया था। आज भी उग्रतारा की उपासना चीनाचार बौद्ध मंत्र से होती है।

एकादशी : अंगप्रदेश के लोकजीवन में एकादिशी व्रत का महत्व भी किसी व्रत से, किसी भी तरह कम नहीं है। प्रत्येक माह के दोनों पक्षों में आनेवाली एकादशियों की संख्या कुल मिला कर चौबीस बनती हैं लेकिन इनमें विशेष महत्व संपूर्णा एकादशी का ही होता है, जो चौबीस घंटे के उपवास का कठिन व्रत है लेकिन इससे खंड़ी एकादशी का महत्व कम नहीं होता। चौबीस एकादशियों में निर्जला एकादशी, हरिशयनी एकादशी, जेठौन एकादशी और कार्तिक एकादशी लोक में और भी विशिष्ट महत्व रखते हैं। लोकविश्वास तो यही है कि इस पर्व का जो निष्ठा के साथ निर्वाह करते हैं—वे अपने सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

ऐरावत : भले ही इस श्वेत रंग के ऐरावत हाथी के संबंध में यह कहां गया हो कि दुग्ध-से धवल इसके बहुत लम्बे-लम्बे चार दाँत हैं; अन्य

के अनुसार दस दाँत हैं लेकिन यह तो सर्वमान्य है कि ऐरावत चौदह रत्नों में एक है, जो समुद्रमंथन के दौरान प्राप्त हुआ था और जिसे इन्द्र ने अपने पास रख लिया था। कोई शक नहीं कि चार या दस दाँतों की कल्पना दरअस्ल चार या दस दिशाओं की ओर ही संकेत है, जिनके रक्षक ऐरावत है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि न केवल इन्द्र को प्राप्त यह श्वेत हाथी अंग प्रदेश की संतान है बल्कि ऐरावत की तरह ही शक्तिशाली श्वेतवर्ण हाथी, जिसका नाम अश्वत्थामा था, अंग प्रदेश के नरेश को इन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ था निस्संदेह वह इस भूमि की संतान होगा । इतिहास से भी यह बात सिद्ध होती है कि अंग प्रदेश में रघुकुल के समय भी श्रेष्ठ विशाल हाथी पाये जाते रहे और मुगल-शासनकाल तक सफेद हाथी पाये जाने का उल्लेख इतिहास ग्रंथ में प्राप्त है।

कजंगल : मुगलकाल में राजमहल के नाम से विख्यात इस नगर का बुद्धकालीन नाम कजंगल है। बताया जाता है इस नगर में कजंगला नाम की एक स्त्री थी, जो बुद्ध वचनों से बहुत प्रभावित थीं और बाद में वह बौद्ध भी हुई। उसी के नाम पर इस क्षेत्र को कजंगल कहा जाने लगा था। हिरनी-बिरनी दोनों बहनें इसी कजंगल की पहाड़ी लड़कियां थीं।

कठघोड़वा नाच : लकड़ी और बाँस की खपच्ची से बना टाँगविहीन घोड़ा और चारो ओर से रंगीन कपड़ों से इस कदर ढका कि इस घोड़े के नचानेवाले के पैर तक न दिखे—कठघोड़वा नाच है। नर्तक, खपच्ची के घोडे में कमर तक धँसा, उसे आहे-तिरछे गोल घेरे में नचाते रहता है। उन्नीसवीं दशक तक यह कठफोड़वा नाच अंगप्रदेश में बेहद लोकप्रिय था। अंगिका के प्रख्यात कथाकार महेन्द्र जायसवाल की कहानी (शनिचरा) इसी नृत्य पर आधारित अंगिका कहानी है।

कताने थान : उत्तर अंगजनपद का कताने थान धार्मिक स्थलों में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है और वृहत्तर अंगजनपद के लोग बड़ी

श्रद्धा और भक्ति के साथ कताने थान में अपनी मनौती के लिए लाखों की संख्या में आते हैं । देवी एकांशा बलराम और कृष्ण की भगिनी है, ऐसी धार्मिक मान्यता है। प्राचीन ग्रंथों में एकांशा सुभद्रा, आर्या, निद्रा, यादवीं आदि नामों से अभिहित है। महाभारत में यह देवी अंगिरा ऋषि की सातवीं पुत्री के रूप में उल्लिखित है। हरिवंश पुराण के अनुसार यह कालरूपणी निद्रा के रूप में वर्णित है। अंगप्रदेश की यह लोकदेवी यादवों की कुलदेवी के रूप में भी पूजित है।

कन्दाहा : कन्दाहा मंदिर के सम्बंध में उत्तर अंगजनपद के ही विद्वान साहित्यकार हरिशंकर श्रीवास्तव 'शलभ' का एक लेख आर्यावर्त पटना, रविवार, १० जनवरी १९९९ ई. में प्रकाशित हुआ था, जिसमें लेखक ने लिखा है कि भगवान शिव ने कामदेव का दहन किया था, जिस कारण वे 'कामारि' कहलाये । इसका विस्तृत वृत्तान्त वाल्मीकीय रामायण (बालकांड) के तेइसवें अध्याय में उल्लखित है । रामायणकार के अनुसार शोभाशाली अनंग ने जहाँ अपना अंग छोड़ा, वह अंगदेश के नाम से विख्यात हुआ । काम-दहन की कथा के परिप्रेक्ष्य में इस स्थान विशेष का भौगोलिक निर्धारण उचित है ।

अयोध्या से सिद्धाश्रम जाने के मार्ग में राम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र ने एक रात्रि गंगा और सरयू के संगम पर व्यतीत किया । वहाँ शुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियों का पवित्र आश्रम था, जहाँ वे दीर्घकाल से तपस्या करते थे । इस आश्रम का परिचय देते हुए विश्वामित्र ने कहा कि यहाँ कभी भगवान शिव चित्त को एकाग्र कर तपस्या करते थे । उस समय कामदेव मूर्तिमान थे तथा शरीर धारण कर विचरते थे । एक दिन भगवान शिव समाधि से उठकर मरुद्गणों के साथ कहीं जा रहे थे । उसी समय उस दुर्बुद्धि कामदेव ने 'पंचशर' से उन पर आक्रमण कर दिया । भगवान शिव ने हुंकार कर उसे रोका, तो अवहेलनापूर्वक उसने उनकी ओर देखा । फिर तो कामदेव के सारे अंग उसके शरीर के जीर्ण-शीर्ण होने लगे ।

कठिन ताप से दग्ध कामदेव भाग खड़ा हुआ। जिस स्थान पर कन्दर्प का शरीर पूरी तरह जलकर नष्ट हो गया और वह अनंग (अंगहीन)

हो गया, वह प्रदेश अंग देश के नाम से विख्यात हुआ । रामायण में वर्णित इन दो स्थलों की भौगोलिक पहचान स्पष्टतः परिलक्षित है । पहला स्थान रामायणकार के अनुसार सिद्धाश्रम (वर्तमान बक्सर) के मार्ग में सरयू और गंगा का संगम स्थल था। प्राचीनकाल में वह करुप देश था । बाद में कोसल राज्य के अधीन हो जाने के कारण वह 'कोसल' हो गया । उस स्थान का भौगोलिक स्वरूप द्रष्टव्य है ।

गंगा बलिया नगर से कुछ दूर ईशान कोण की ओर बहती है; वहाँ ''ददरी मेला'' से अग्निकोण की ओर ''निमेज'' गाँव के उत्तर आती है। किन्तु इसके पहले गंगा नदी सरयू के धाराप्रवाह प्रचंड वेग का धक्का खाकर दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और भोजपुर के गढ़ से टकराती है । इसी ददरी मेला के पश्चिम प्राचीन समय में सरयू, गंगा का संगम करती थी और वह ''तमसा'' के प्रवाह से बढ़कर आती थी। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण ने सिद्धाश्रम पहुँचने के पूर्व इसी संगम पर एक रात्रि विश्राम किया था । वहीं पर ''कारी स्थान'' है-जो पहले ''कामाश्रम'' था। जहाँ भगवान शिव पर कामदेव ने ''पंचशर'' से प्रहार किया था। वहाँ कामेश्वर नाथ महादेव का अति प्राचीन मंदिर भी है।

इस वृतांत से सम्बद्ध दूसरा स्थान है अंगदेश, जहाँ भगवान शिव के भय से दग्ध कामदेव भागकर आया और शिव ने उसे खदेड़कर उसके अंग को पूर्ण रूप से नष्ट कर उसे अनंग बना दिया । अंग देश का वह प्राचीनतम स्थल 'कन्दाहा' है, जो पूर्व काल में 'कन्दर्प-दहन' और वर्तमान काल में कन्दाहा के नाम से विख्यात है । यह पौराणिक स्थल सहरसा से चौदह किलोमीटर पश्चिम है । यहाँ धेमुड़ा नदी एक बड़े चौर से आकर कन्दाहा और ''देवन गोपाल'' गाँव के मध्य होकर बहती है । भगवान शिव ने विवेक, बुद्धि एवं सुदृढ़ इच्छाशक्ति के प्रतीक अपने तीसरे नेत्र के ताप से कामदेव का दहन कर दिया था । उनके तीसरे नेत्र में सूर्य का प्रखर तेज था । कन्दाहा में द्वादशादित्यों में प्रसिद्ध 'भवादित्य' का प्राचीन सूर्यमंदिर है । सम्पूर्ण अंगदेश का यह एकमात्र सूर्यमन्दिर है । यह कन्दर्प-दहन का साक्षी भी है तथा अंगदेश के निर्माण का श्रेय इसी स्थल को है ।

पुराण काल में यह श्लेशात्मक वन का पश्चिमी छोर था । वाराह

पुराण (उत्तरार्द्ध) में मंदराचल पर्वत से लेकर मूजबान पर्वत तक फैले इस वन का उल्लेख है । कन्दर्प-दहन के पश्चात् भगवान शिव ने इस वन में अनेक रूपों में विहार किया था ।

सिंहेश्वर स्थान के शिवलिंग की कथा भी इसी प्रसंग से जुड़ी हुई है। यहाँ भगवान शिव हिरण के रूप में विहार कर रहे थे । तभी भगवान विष्णु, इन्द्र और ब्रह्मा उन्हें खोजते हुए आये और उन्हें पहचान कर तीनों देवताओं ने उनके शृंग को पकड़ लिया; हिरण तो विलुप्त हो गया, किन्तु भगवान विष्णु ने अपने हाथ में आये शृंगमूल को जहाँ स्थापित कर दिया, वही स्थान शृंगेश्वरनाथ (सिंहेश्वर नाथ) के नाम से विख्यात हुआ ।

वर्तमान कन्दाहा के चारों ओर अनेक प्राचीन शिव मंदिर हैं, जो भगवान शंकर की साधना, तपस्या एवं विहार-स्थलों के प्रतीक हैं । इन मंदिरों में देवन वन महादेव का विशाल मंदिर था, जहाँ बाणासुर द्वारा स्थापित शिवलिंग था । किन्तु दो वर्ष पूर्व मूल मंदिर कोसी के कटाव में विलीन हो चुका है । उसके स्थान पर नये भव्य मंदिर का निर्माण कराया जा चुका है। चैनपुर गाँव में नीलकंठ महादेव तथा महिषी के निकट नकुचेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है । मुख्य कोशी से पश्चिमी इक्ष्वाकुवंशी राजा 'कुश' द्वारा स्थापित कुशेश्वर नाथ और उत्तर में सिंहेश्वर नाथ महादेव मंदिर भारत प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है । (यह आलेख मुझे श्रीशलभ से प्राप्त हुआ था जो जगप्रिय जी की पुस्तक 'अंगुत्तराप का सांस्कृतिक इतिहास' में सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित है)

करकंडु : करकंडु चंपा नरेश दधिवाहन का पुत्र था, जिसके शरीर में खुजली के आक्रमण के कारण उनका नाम करकंडु पड़ गया था। जैन कथा के अनुसार दलिवाहन की पत्नी पद्मावती जब गर्भवती थीं, तब उसकी इच्छा हाथी पर सवारी करने की हो गई। राजा रानी की इच्छानुसार ही उसे हाथी पर बिठाकर भ्रमण के लिए निकल पड़े लेकिन कुछ दूर के बाद ही हाथी नियंत्रण से बाहर हो इधर-उधर भागने लगा। राजा दधिवाहन ने किसी तरह एक वृक्ष की डाल पकड़ कर अपनी जान बचाई लेकिन रानी पद्मावती कहीं दूर जा कर गिरी और संज्ञाशून्य हो

गई—जिसे, उसी मार्ग से गुजरते एक साधु ने देखा, तो उसे अपने आश्रम ले आये, जहाँ साध्वी उसकी देखभाल करती थी।

जब रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, तो शिशु को एक चादर में लपेट कर वह श्मशान में रख आई और आश्रम की साध्वी से कह दिया कि मरा हुआ शिशु हुआ था, इसी से श्मशान में छोड़ आई। आश्रम के लोगों ने विश्वास भी कर लिया। इस बीच रानी ने उस श्मशानपालक से संपर्क बना लिया था, जो उस बालक को अपने घर ले आया था। रानी आश्रम के मिले मधु-आहार श्मशानपालक के पास भेज देती।

एक समय, जब करकंडु युवक हो चला था, कंचन नगर की ओर जा रहा था, तभी मार्ग में थकान के कारण उसे गहरी नींद आ गई। यह वही समय था जब कंचनपुर का राजा मर गया था और नये राजा की खोज में वहाँ के मंत्रियों ने घोड़ा छोड़ा था कि वह जिसे भी अपनी पीठ पर ले आयेगा, वही उस राज्य का राजा घोषित होगा।

घोड़ा जब सोये करकंडु के निकट पहुँचा, तो उसके शरीर पर राजचिन्ह को देखकर उसकी परिक्रमा की और उसे अपनी पीठ पर लेकर राज्य ले आया। मंत्रियों ने करकंडु को, राजपुरोहितों के विरोध के बावजूद, राजा घोषित किया और नये राजा ने जल्द ही विद्रोह को भी शांत कर दिया।

कुछ समय के बाद किसी कारण से चम्पा के नरेश दधिवाहन और करकंडु के बीच विवाद इतना बढ़ गया कि युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। जब इसकी जानकारी रानी पद्मावती को मिली, तो वह आश्रम से भागती हुई चंपा आई और अपने पति से उसने सारी बातें बताईं। सारी बातें जानकर राजा दधिवाहन ने करकंडु को राज सौंप कर वैराग्य धारण कर लिया लेकिन करकंडु भी अधिक समय के लिए राजकाज नहीं संभाल पाया। एक बार एक बैल को देखकर उसने भी वैराग्य ले लिया और राजकाज छोड़ कर भ्रमण के लिए निकल पड़ा। इस कथा का उल्लेख डॉ. जगदीश चंद्र जैन ने भी भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अपनी पुस्तक 'दो हजार वर्ष पुरानी कहानियों' में किया है। लगता है दधिवाहन नाम से चंपा में कई नरेश हो गये थे।

करमा-धरमा : करमा-धरमा जनजातीय लोकपर्व है । चूँकि अंगप्रदेश का जंगलतरी (दक्षिणी भाग) जनजातीय बहुल क्षेत्र है—जहाँ विभिन्न जनजातियों का निवास है, इसी से यहाँ करमा-घरमा के विभिन्न रूप प्रचलित हैं और उन जनजातियों के नाम पर उनके करमा-धरमा पर्व के नाम भी मिलते हैं, जिनमें कुछ-कुछ अंतर भी है। जनजातीय संस्कृति के विद्वान डॉ. डोमन साहु समीर ने कभी मुझे बताया था कि यह त्योहार मुख्य रूप से खरीफ फसल बोने के बाद और फिर रब्बी फसल कटने के बाद आयोजित होता है। प्रमुखता दूसरे अवसर के त्योहार की है । इस अवसर पर करमा वृक्ष की एक शाखा जनजातीय कुँआरों के द्वारा काट कर लाई जाती है, जिसे ही पूजास्थल पर गाड़ कर उसकी पूजा की जाती है; फिर दिन-रात का नृत्य आरंभ हो जाता है—जिसमें स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी भाग लेते हैं। इस नृत्य में अगर किसी युवक के पैर का अंगुठा किसी युवति के पैर के अंगुठे से सट जाता है, तो उसी स्थल पर बिना किसी उपहार या औपचारिकता के दोनों विवाह-सूत्र में बंध जाते हैं। इस अवसर पर जनजातियों के गीत भी गूंजते रहते हैं।

कहवी : अनुभवसिद्ध सुक्ति शैली में कही गईं बात ही कहवी है। हिन्दी में जो लोकोक्ति है, वही अंगिका में कहवी कहाती है। कवयित्री सुप्रिया सिंह वीणा ने अंगिका कहवी का एक सुंदर संकलन प्रकाशित किया है। अंगिका कहवियों एक और उल्लेखनीय संकलन हिन्दी अकादमी दिल्ली की ओर से प्रकाशित है जिसमें कृष्ण मुरारी सिंह किसान द्वारा संकलित अंगिका कहवियों का संकलन है।

कारु खिरहरी : कारू खिरहरि सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी के शिव भक्त थे, जिनका जन्म अंगुत्तराप के महिषी प्रखंड में माना जाता है। अंगप्रदेश में इनकी गिनती लोकदेव के अन्तर्गत ही होती है । ऐसा होने के पीछे इनके संबंध में प्रचलित ऐसी कथाएं हैं, जो इन्हें लोकदेव की श्रेणी में लाती हैं । कहा जाता है कि इन्होंने अपनी चुटकी बजाकर ही कुशेश्वर स्थान के शिवमंदिर में जड़े ताले को खोल दिया था । इनके

संबंध में यह भी कथा है कि एक बार भगवान शिव ने प्रत्यक्ष होकर उनसे कहा कि आज से सातवें दिन बाघिन के आघात से उनकी मृत्यु हो जायेगी और ऐसा ही हुआ—जब वह नाना और नानी से भेंट कर अपने जन्मस्थान पहुँचे ही थे, कि एक बाघिन के आघात से उनकी मृत्यु हो गई ।

काली मंदिर : जिला मुख्यालय से करीब छह कि. मी. उत्तर पूर्णिया सिटी में सौरा नदी के तट पर अवस्थित प्रसिद्ध काली मंदिर अदभुत छटा बिखेरता, धार्मिक भावनाओं को प्रगाढ़ बनाने वाली खुशबू फैलाता लोगों को आकर्षित करने में पीछे नहीं है । ''सच्चे हृदय से मन्नत मांगिए मन चाहा फल पाइए'' ऐसी धारणा जब लोगों के हृदय में बैठ जाए तो उस स्थान, उस प्रतिमा के प्रति कैसी आस्था होगी इसका अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है । एक विचित्रता और भी जिससे आप भी अचम्भित रह जायेंगे । मंदिर काली की और दशहरा में धूमधाम, भीड़-भड़क्का, भव्य मेला, पशु बलि । हालांकि काली पूजा में भी मेला लगता है । लेकिन पसिद्ध है दशहरा का मेला । मेला में भी भीड़ ऐसी-वैसी नहीं, देवी का दर्शन करना दुर्लभ । दो किलोमीटर तक सड़क पूर्णतः बाधित हो जाती है ।

इस मंदिर की स्थापना के पीछे भी एक दन्त कथा है । कहा जाता है कि आज से लगभग तीन सौ पचास वर्ष पूर्व एक सनातन ब्रह्मचारी वर्तमान मंदिर परिसर से एक कि.मी. दक्षिण भयावह जंगल में एक कुटिया बनाकर रहा करता था। ब्रह्मचारी माँ काली का सच्चा उपासक था ।

देवी की कृपा से एक दिन जब वह पूजा-पाठ कर अपनी कुटिया पर लौटने वास्ते नदी तट पर पहुँचा तो उसे एक काली स्याह आकृति नदी में बहती नजर आयी, वह भय से कुछ कदम पीछे हट उस आकृति को देखने लगा । कुछ पल बाद आकृति उनके ठीक सामने किनारे पर आ लगी । ब्रह्मचारी साहस जुटा उस आकृति को जो अब एक पत्थर के रूप में दीख रही थी, के पास पहुँचा और इधर-उधर छूकर उस पर

गौर करने लगा । उसे लगा कि शायद माँ काली ने उसकी वर्षों की तमन्ना पूरी करने हेतु इस पत्थर को भेजा है उस समय ही एक शिल्पी संत भी नदी तट पर हाथ मुँह धो रहा था, उन्होंने भी पत्थर को देखा और इस पत्थर से एक अदभुत प्रतिमा बनने की बात ब्रह्मचारी को बतायी । तत्पश्चात दोनों साधकों ने मिलकर इस कार्य को मूर्त रूप प्रदान कर माँ काली की प्रतिमा की स्थापना की । तभी से इस प्रतिमा की स्थापना मानी जाती है ।

कासड़ी पहाड़ी : कहलगाँव से लगभग दस किलोमीटर पूर्वोत्तर की वह पहाड़ी, जो अपनी अनेक चोटियों को लिए ओरिया गाँव तक विस्तृत है, को कासड़ी पहाड़ी के नाम से लोकमानस जानता है। कासड़ी कहे जाने के पीछे यह मान्यता प्रचलित है कि काशी की स्थापना इसी स्थल पर होनी थी लेकिन किसी देवता की चुगली कर दिए जाने के कारण काशी यहाँ न बस सकी और यह कासड़ी होकर रह गई। दशकों पहले इस पहाड़ी पर उस देवता की मूत्ति होने की बात यहाँ के लोग करते हैं जिस पर यात्री आने-जाने के क्रम में पाँच पत्थर फेंकना नहीं भूलते; जिस कारण वह मूर्त्ति अब नहीं दिखती। इसी पहाड़ी की सबसे बड़ी चोटी मुनिम चोटी के नाम से स्थानीय लोग जानते हैं। लोकविश्वास है कि इसी चोटी पर दुर्वासा ऋषि निवास करते थे। दुर्वा दल पर ही जीवन-यापन करने के कारण इनका नाम दुर्वासा था। आज भी उस ऋषि के नाम पर मुनिम झील, मुनिम मंदिर वहां प्राप्त होते हैं।

कीचक : महाभारत के राजा विराट का साला और सेनापति। लोकविश्वास है कि द्रोपदी के साथ अभद्र व्यवहार करने के कारण भीम ने सहरसा के भीम नगर में इसका बध किया था, इसीसे इस स्थान का नाम भीम नगर है ।

कृष्णाराम : ग्यारहवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य यदुवंशी हरिदत्त

अपनी पत्नी कजला और चार पुत्रों को लेकर उत्तर अंगजनपद के मधेपुरा अंचल में जा बसे, क्योंकि सूखे के कारण मंदारक्षेत्र में मवेशियों के लिए चारे का संकट उठ खड़ा हुआ था ।

संभवतः यह काल वही होगा जब विसुरौत चारे के संकट को लेकर सबौर छोड़कर मवेषियों को लिए मधेपुरा के कोशी अंचल में जा बसे थे ।

कृष्णाराम चारो भाइयों में सबसे बड़े थे और ब्रह्मचर्य के व्रत में लीन रहनेवाले पुरुष, इसीसे इनकी पत्नी बुधनी गौराडीह में अपने मायके में ही रह गयी थी । बुधनी के दुख को समझते हुए कजला ने अपने छोटे पुत्र को कृष्णाराम के पास भेजा कि वह बुधनी का गौना करा लाए । कृष्णा ने कहा कि यहाँ बाघ बहुत उतरते हैं, तुम मवेशियों की रक्षा नहीं कर सकोगे, लेकिन सुवरण ने आश्वस्त किया और उन्हें घर भेज दिया ।

बुधनी का गौना हुआ और कृष्णाराम जब बथान लौटने को हुये तो बुधनी ने पुत्रप्राप्ति की इच्छा उनके सामने रखी लेकिन ब्रह्मचारी कृष्णाराम ने इसमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपने लाठी को छील कर उससे पानी निकाला, जिसे बुधनी को पिलाते हुए कहा कि अब तुम माता भी बन सकोगी ।

जब बुधनी को पुत्र हुआ, तो उसी समय मोरंग के राजा भीमसेन को भी पुत्री हुई । एक पंडित के इस भविष्यवाणी पर कि आगे चल कर यह लड़की सात पुश्तों के नाश का कारण बनेगी, पंडित की सलाह पर राजा ने उसे पेटी में बंद कर नदी में फेंकवा दिया जिसे जंगल के एक सरदार ने छाना और लड़की को घर ले आया ।

बाद में जानकारी मिलने पर उसी पंडित ने राजा से कहा कि अगर वह उस सरदार की पुत्री से विवाह करे, तो उसे पुत्र की प्राप्ति होगी ।

जब सरदार ने भीमसेन को लड़की देने से इनकार किया, तो राजा ने आक्रमण कर दिया लेकिन वह सरदार के सामने टिक न सका । हारकर उसने कृष्णाराम का सहयोग लिया, इस शर्त्त पर कि अगर वह उस लड़की को प्राप्त कराने में सफल होगा, तो राजा अपने राज्य का

आधा हिस्सा उन्हें दे देगा । कृष्णाराम ने सरदार के सेवकों और सरदार पर मरछौर फेंक कर चेतनशून्य बना दिया और इस तरह राजा लड़की को प्राप्त करने में सफल हो गया । कृष्णाराम को आधा राज्य तो मिल गया लेकिन लड़की भीमसेन को धिक्कारती हुई आकाश मार्ग में विलीन हो गई ।

कथा सुनानेवाले के पास शायद पूरी कथा न हो, इसीसे कृष्णाराम की कथा आगे इस तरह बढ़ जाती है कि एकबार वह अपने भाई सोबरन के साथ लौट रहा था कि रास्तें में सोबरन को सलेस की फुलवारी दिखाई पड़ी और उसे ख्याल आया कि उसकी सरहज ने उससे फूल लाने को कहा था । वह फुलवारी में प्रवेश करना चाहता है, तो कृष्णाराम उसे रोकना चाहते हैं, लेकिन भाई रुकता नहीं, परिणाम यह होता है कि वह सलेस के मौगरी हाथी के द्वारा मारा जाता है, जब कृष्णाराम को इस घटना की जानकारी होती है, तो वह भी उस फुलवारी की ओर निकल जाते हैं, लेकिन वह भी उस हाथी के सूंढ़ के आघात से मारे जाते हैं । लोकविश्वास है कि नेपाल के मोहली खोला ही वह इलाका है जहाँ दोनों भाइयों का सलेस के मौगरी हाथी द्वारा प्राणान्त हुआ । कृष्णाराम को लोकदेव के रूप में पूजे जाने के पीछे की कथा यह है कि जब छेछन डोम ने सुबरन की स्त्री के साथ अभद्र व्यवहार (दूध लेकर उसकी कीमत नहीं देना) किया, तो सुबरन ने कृष्णाराम से शक्ति प्राप्त कर छेछन मल की गर्दन पर अस्सी मन का पत्थर लुढ़का दिया था, जिससे उसकी मौत हो गई थी ।

केवल मलाह : केवल मलाह मलाह जाति के लोकदेव तो नहीं, लेकिन ये इस जाति में एक वीरपुरुष की तरह सम्मानित अवश्य हैं। केवल मलाह के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि ये बचपन से ही देवांशी थे और बलवान भी वैसा ही, जिनकी माता का नाम जमुनी देवी और पत्नी का सोनबनी था । मलाहों के बीच केवल की प्रतिष्ठा ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, तो मलाह जाति के कुलदेवता अमरसिंह को यह बात खलने लगी और उनकी इस प्रतिष्ठा को समाप्त करने लिए उन्होंने केवल के बथानरक्षक रघुनाथ भुइयां तथा साथी देवकी सहनी को अपने पक्ष में

कर लिया और फिर केवल को स्वप्न में बताया कि गाँव की नदी में मछलियां उपट रही हैं । फिर क्या था केवल मलाह अपने छोटे भाई सुग्गीनाथ को लेकर नदी की ओर चल पड़े । सुग्गी ने आए अपशकुन के बारे में उन्हें बताया भी, लेकिन वह भाई की बात को अनदेखी कर गये । इधर अमरसिंह के प्रभाव में आ गये रघुनाथ भुइयां और देवकी सहनी ने केवल पर घात के लिए बाघ-बाघिन का रूप धर लिया था। इधर केवल ने नदी में नाव को धकेलना शुरू किया, तो नाव हिली तक नहीं, क्योंकि अमरसिंह ने उसे जल के नीचे से पकड़ रखा था । स्थिति का ज्ञान होते ही केवल मलाह ने लोकदेव के विरुद्ध जाना अच्छा नहीं समझा और उस बाघ-बाघिन के आघात से केवल मलाह के शरीर का अंत हो गया । लेकिन देवांशी होने के कारण मलाहों के बीच वह लोकप्रिय हो गये। कथा तो यह भी है कि आघात के पहले केवल और अमरसिंह में मल्लयुद्ध भी हुआ और अमरसिंह की हार देखते हुए ही उन दोनों ने बाघ-बाघिन रूप धर लिया था।

कोशी : कोशी अंगुत्तराप (उत्तर अंग) की महानदी है, जिसकी महिमा और भयावहता को लेकर कई लोककथाएं इसके साथ जुड़ी हुई हैं। एक कथा के अनुसार कोशी के रूप-सौन्दर्य पर असुरराज रानु मुग्ध हो उठा था और विवाह का प्रस्ताव रख बैठा। इनकार करना मुश्किल था, इसी से कोशी ने एक शर्त्त रख दी कि सुबह होने से पहले अगर वह उसे बाँधों से बाँध लेता है, तो वह उसके साथ ब्याह कर लेगी। रानु ने शर्त्त स्वीकार कर ली लेकिन इन्द्र ने मध्य रात में ही मुर्गे की आवाज कर दी। असुरराज ने सुबह हो जाने के भ्रम में काम छोड़ दिया। इस तरह वह छला गया। कथा यह भी है रानु ने किसी अन्य रूपवती से ब्याह कर लिया और रानु के देह-बल पर मुग्ध कोशी उसके घर के निकट गरजने लगी जबकि असुरराज अपनी पत्नी के साथ कोहवर में आराम कर रहा था। कोशी के इस तरह आवाज करने से वह गुस्से में आ गया—उसे दूर करने के खयाल से पचास मन की कुदाल से वह खाई खोदता चला गया और कोशी बेहाल बनी उसके पीछे हाँफती-हहरती बहती रही।

दूसरी कथा यह है कि कोशी की शादी जिस घर में हुई, वहाँ उसे चैन नहीं था। सास-ननदों की गालियों से परेशान रहती। इसीसे एक रात वह ससुराल से निकल भागी। सास-ननद ने जाना, तो गालियों के साथ मंत्रों का उसपर प्रहार करना शुरू कर दिया लेकिन कोशी उस अंधेरी रात में गाँव-का-गाँव उजाड़ती भागती रही; फिर रिश्ते की एक बहन के दीया जलाकर रोकने पर वह रुकी और अंगुत्तराप सम्पूर्ण विनाश से बच गया। कोशी महानदी है और देवी के रूप में पूजित है। अंगिका साहित्य के विद्वान हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ के अतिरिक्त चंद्रप्रकाश जगप्रिय ने ऐसे अनेक कोशी गीतों का प्रकाशन भी किया है। हिमालय से निकलनेवाली यह नदी अंत में अंग प्रदेश की गंगा में समा जाती है।

कोहवर : कोहवर विवाह-संबंधी विविध विधियों को पूर्णता देने के लिए वह विशेष गृह है, जो कुलदेवता का गृह भी होता है । गृह की दीवार पर कोलवर के चित्र बनाए जाते हैं । कोहवर कला असल में कच्चे चावल के घोल से बनी पिठाली और लाल रंग से बने चित्र हैं। ये चित्र फूल, मयूर, स्वस्तिक, आम्रपल्लव, लताओं के हो सकते हैं । पहले तो रेखाओं से एक आयातकार घेरा बनाया जाता है, जिसे आम्रपल्लव से गुंथी लताओं से घेरा जाता है, फिर इसी घेरे के अंदर विभिन्न चित्रों में रंग भरे जाते हैं । इन चित्रों में पूर्वजों के स्वजन की संस्कृति की भी झलक होती है ।

कौआ हँकनी : कौआ हँकनी गीत प्रधान लोकनाटिका है, जिसमें संतानहीन छोटी रानी को एक तरह से परिवार से अलग-थलग करने के लिए उसे काग हँकाने (भगाने) का कार्यभार सौंप दिया जाता है । यह करुण रस प्रधान लोकनाटिका है ।

खटिक : फलों को बगीचे में पकने से पहले, उसे खरीद कर, उसका व्यापार करनेवाला खटिक कहाता है।

खेदन महाराज : अंगप्रदेश के लोकदेवताओं में खेदन महाराज की कीर्त्ति भी कम लोकप्रिय नहीं है । लोकविश्वास है कि इनके पूर्वज नौगछिया प्रखंड के विषपुरिया ग्राम के खिरहरी परिवार से संबंध रखते थे, यही कारण है कि कारू खिरहरी से खेदन महाराज की गहरी निकटता थी । यह भी आश्चर्य की बात नहीं कि कारू खिरहरी भी उसी गाँव से संबंध रखते हों । ११वीं सदी के इस लोकदेव के जन्मस्थान के संबध में ठीक-ठीक बता पाना कठिन है, सिर्फ परम्परा से चले आ रहे विश्वास पर ही विश्वास करना होगा ।

खेदन महाराज के लोकपूज्य हाने के पीछे के कारण लोक में नहीं मिलते; सिर्फ इतना कि उगरी महाराज महील देवी के उपासक खेदन जी को जी से नहीं चाहते थे, इसीसे अपने मित्र अनादिल के साथ मिल कर उन्होंने खेदन महाराज को आहत करने की योजना बनाई । चूँकि अनादिल तांत्रिक विद्या में सिद्ध था, इसीसे वह तंत्र के सहारे बाघिन का रूप धरकर खेदन महाराज के निकट पहँच गया, जो उस समय सुरहा के जंगल में भैंस चराते हुए सो रहे थे । चूँकि खेदन जी सो रहे थे, इसी से बाघिन रूप में अनादिन लौट आया, जब खेदन महाराज को पता चला, तो उन्होंने जंगल के सारे बाघों को मार डाला, बस एक बाघिन ही बच गयी, जिसके प्रहार से खेदन महाराज का प्राणान्त हो गया । लोकविश्वास है कि मधेपुरा का टेंगराहा चौर ही वह स्थान है, जहाँ उस बाघिन के आघात के कारण खेदन महाराज की देहलीला समाप्त हुई थी । जब उनका पार्थिव शरीर उनके पैत्रिक गाँव लाया गया और उसकी चिता सजाई गई, तो आकाशवाणी हुई, कि खेदन जी शरीर से भले ही नहीं है, आत्मा से वह सबके बीच रहेंगे और सबकी रक्षा करते रहेंगे । इस तरह खेदन महाराज लोकदेव के रूप में लोक में व्याप्त हो गये ।

वैसे कथा सुनानेवाले ने मुझे उनके माता-पिता, बहन-बहनोंई के नामों को भी बताया था, लेकिन कथा में उन लोगों की किसी महत्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख नहीं किया । दूसरी बात यह है उगरी महाराज तो स्वयं लोकदेव हैं, बढ़ई जाति के लोकदेव, आखिर लोकदेव खेदन

महाराज से उनके विरोध का कोई कारण नहीं दिखता, न कथावाचक ने ही कुछ बताया । हो सकता है, उगरी महाराज के स्थान पर कोई और नाम हो, जो लोकगायकों के कारण बदल गया है और वही लोक में फिर प्रचलित हो गया है ।

गंगमैना : गंगा के किनारे-किनारे झुंड में दिखनेवाली मैना प्रजाति की चिड़िया जिसकी विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डॉ. रतन मंडल नें कहा था कि गंगमैना गंगा के बलुआही भाग में अपना-अपना बसेरा बनाता है और बाढ़ में एक साथ ही दसो बीस की संख्या में बह जाती हैं, मर जाती हैं, लेकिन गंगा के किनारे बसेरा बनाना नहीं छोड़ती । इस मैना की प्रवृतियों को लेकर अंगिका के कवि त्रिलोकी नाथ दिवाकर ने एक प्रतीक कविता का सृजन भी किया है, वह निम्नांकित है :

गंगा किनार में गंग मैना/जिनगी बिताबै यहीना/बालू के रेतों में,
गंगा के फेटों/गोता लगाबै, रोजीना,/गंगा किनार में गंग मैना ।/
मनों के शांत छै दिलों के भोली/मैलों शरीर की मिट्ठों छै
बोली/गंगा के फेटों में, खेढ़ी के खेतों में/छर्र-छर्र बहै छै
पसीना,/गंगा किनार में गंग मैना ।/गंगा कछारी में डालै छै
डेरा/कलकों ठिकानों नै होतै सवेरा/उमतैली बाढ़ों में, पूरबा
बयारों में/धँसना गिरै छै जहीना,/गंगा किनार में गंग मैना ।/
घोर विपत्ती में हिम्मत नै हारै/मेहनत के बलों पर जीवन गुजारै/
धूपों-बतासों में, पूसों के रातों में/आपनों खोजै छै ठिकाना../
गंगा किनार में गंग मैना ।/जह्नु के जंघा नें देनें परान छै/गंगा
के कोखों में भेलों जवान छै/धरती अकाशों में, दीरा के काशों
में/फुर्र-फुर्र उड़ै छै यहीना..../गंगा किनार में गंग मैना ।

गंगलदे : गंगलदेवी अपने अंतिम अक्षरों से कटकर गंगलदे हो गई है। गंगा देवी ही गंगलदेवी है, जो कहलगाँव के गंगलदे गाँव मे प्रस्तर मूर्त्ति के रूप में कभी प्राप्त थी। अब वह मूर्ति नहीं है, जिसे इतिहासकार बुकानन ने देखी थी लेकिन आज भी स्थानीय लोग उस स्थल को

गंगादेवी थान के रूप में ही पूजते हैं।

गढ़ी माई : गढ़ी माई, उत्तर अंगप्रदेश और नेपाल में बसे हरिजनों की कुलदेवी है । यूँ तो इनकी बस्तियों में भी गढ़ी माई का गहबर होता है, लेकिन इस कुलदेवी का मुख्यालय नेपाल का वारा जिला ही माना जाता है, जहाँ पहाड़ी नदी के किनारे एक शिखर पर इस देवी का स्थान है और कि जहाँ प्रत्येक पाँच वर्ष पर विशाल मेले का आयोजन होता है, जिसमें अग्नि प्रज्ज्वलन के बाद पाँच भैसों की बलि हरिजनों के द्वारा दी जाती है, इसके बाद बकरों, कबूतर आदि की भी । कहते हैं, गढ़ी माई का पूजनोत्सव पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में राजकैद से मुक्त होने के बाद भगवान चौढारी नाम के एक व्यक्ति ने शुरू किया था । गढ़ी माई का पूजनोत्सव अंगुत्तराप और नेपाल का साझा लोकोत्सव है।

गनीनाथ : दो दशक पूर्व मुझे माया प्रेस (खलीफाबाग, भागलपुर) से लोकदेव गनीनाथ से जुड़ी संभवतः सोलहपृष्ठोंवाली एक पुस्तिका मिली थी, जिसमें गनीनाथ से जुडे भक्ति के कुछ पद थे और तब से मैं इस लोकदेव के बारे में जानने को इच्छुक रहा । आश्चर्य तब हुआ, जब कई जातियों के मेरे मित्रों ने उन्हें अपनी जातियों का कुलदेवता बताया । ये हलवाई, कानू, तेली के ही कुलदेवता नहीं, सूढ़ी, कलवार, कुम्हार के भी कुलदेवता कहे गये हैं । लेकिन डॉ. आभा पूर्वे, सच्चिदानन्द किरण, धीरज पंडित ने अपने जिन कुलदेवता या कुलदेवी का नाम बताया, वे गनीनाथ से अलग भी हैं ।

मुझे जिस प्रेस से गनीनाथ से जुड़ी पुस्तिका मिली थी, उसके प्रेस मालिक तो हलवाई जाति के ही हैं, और उन्होंने बताया भी कि गनीनाथ हमारी जाति के कुलदेवता हैं। इनके संबंध में एक रोचक कथा की जानकारी भर मिली कि जब धरती पर लोक के कल्याणार्थ भगवान शिव, विष्णु और ब्रह्मा ने यह निर्णय लिया कि विश्वामित्र की भूमि पर दिव्यांश को भेजा जाय, जो धर्म की भी रक्षा कर सके और इसी के फलस्वरूप एक दिव्य बालक का जन्म कोशी-गंगा की संगम भूमि पर

होगा और यही बालक आगे चल कर गनीनाथ नाम से विख्यात हुआ, जिनकी धर्मपत्नी का नाम क्षमामती बताया जाता है । इन्हें वैशाली का निवासी भी बताया गया है ।

गरीबन बाबा : गरीबन बाबा रजक (धोबी) जाति के लोकदेवता के रूप में मान्य हैं, जिनके संबंध में यह कथा प्राप्त होती है कि कोशी के ग्वाले और ब्रह्म ठाकुर से उनकी गाढ़ी मित्रता थी, वह इसलिए कि तीनों ही चम्पक वन के नामी पहलवान थे । (मेरे एक मित्र ने बताया था कि चम्पक वन चम्पानगर का दक्षिणी-पश्चिमी भाग था, जहाँ से होकर चानन नदी गंगा में मिलती थी ।) जो हो, इन तीनों मित्रों की कुश्ती से नदी की गति बाधित होती थी, तो उसने शिकायत की लेकिन चानन की बातों पर ध्यान नहीं देने के कारण उसने अपनी बहन गेरुआ से उसकी शिकायत की, तो गेरुआ ने बाघिन का रूप धर कर गरीबन पर, अखाड़े पर जाते समय, आघात कर दिया, जिसके कारण उसका प्राणान्त हो गया और उसकी लाश नदी में बहती हुई खेपरी घाट पर पहुँची, तो वहाँ के धोबियों ने उस लाश की दाह-क्रिया की, इससे प्रसन्न होकर मृतात्मा ने धोबियों को यह वरदान दिया कि आज से उनकी भट्टी में साफ हो रहे कपड़े कभी आग से नहीं जलेंगे । आज से भट्टी में साफ हो रहे कपड़े की रक्षा गरीबन किया करेगा, और उस दिन से गरीबन रजक गरीबन बाबा के नाम से धोबी जाति में पूज्य हो गये ।

गांगो देवी : गांगो देवी लोकदेवी है, जिसका संबंध मल्लाह जाति से है। इस लोकदेवी के संबंध में यह कथा भी मिलती है कि एक बार गांगो के पति, ससुर और भैसुर जब गंगा में देर तक जाल बिछाने के बाद भी कुछ न पा सके, तो गांगो के पति ने अपनी पत्नी का नाम लेकर फिर जाल फेका। इसका चमत्कार यह हुआ कि जाल में बड़ी-बड़ी मछलियां आ फँसी। यह देख गांगो के ससुर-भैसुर ने भी वैसा ही किया और उनके साथ भी यही चमत्कार हुआ। जब यह कथा मल्लाह-समाज

में गई और बात सच निकली, तो गांगो गुणमंती होकर मल्लाह समाज की लोकदेवी बन गई।

गुवारीडीह : भागलपुर के बिहपुर अंचल के कोसी तट पर बसा गाँव, जहाँ प्राचीन चम्पा से जुड़ी कई महत्वपूर्ण चीजों की प्राप्ति हुई है। पुरातत्वविदों का अनुमान है कि यहाँ संभव है अंग की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति टीले के नीचे सुरक्षित हो, जिसकी खुदाई आवश्यक है।

गुलाबबाग : पूर्णिया जिला का राजोद्यान। कभी विशिष्ट गुलाबों का बाग, जिसे यहाँ के राजा पी. सी. लाल ने बनवाया था और यहीं लगता था पूर्णिया का प्रसिद्ध गुलाबबाग मेला। उन्नीस सौ तीस-इकतीस में राजा ने ही इस मेले की नींव रखी थी। मेले की रौनक ऐसी बढ़ी कि कलकत्ता की मशहूर थियेटर कम्पनियों ने जैसे यहाँ डेरा ही बना लिया। नर्त्तकियों के नृत्य-संगीत का घर बस गया और फिर यहीं से शुरु अश्लीलता का व्यापार। यह व्यापार ऐसा फैला कि एक दिन गुलाबबाग का मेला ही हमेशा के लिए उजड़ गया। अब तो कथाओं में ही जीवित है यह मेला—गुलाबबाग का गुल्यबबाग ही कहाँ है, अब!

गोछी घोंर : रोपनी के बाद बचे हुए बिचड़े को गृहस्थ जब घर के किसी पवित्र स्थान पर रखते हैं, तो इस कृषि-संस्कार को गोछीघोंर कहते हैं। गोछीघोंर दरअस्ल रोपनी कार्य की समाप्ति का सूचक है।

गोदना : गोदना अंग महाजनपद की प्राचीनतम लोककलाओं में एक हैं। गोदना—यानी देह-अलंकरण । विशेष प्रकार से तिल या किसी पदार्थ के तेल में कालिख मिलाने से गोदना की स्याही बनाई जाती है और फिर बबूल के काँटे या सूई से देह के किसी अंग पर चित्र को गोदकर उतार दिया जाता है, इसीसे इसका नाम गोदना है । अंगप्रदेश के आदिवासी इलाकों में यह अलंकरण आज भी लोकप्रिय है, वैसे सभ्य समाज में भी गोदने की प्रथा प्रचलित थी, चाहे इसके पीछे जो भी

लोकविश्वास रहा हो या सुरक्षा की भावना । मैंने गाँव में लोगों से यह कहते भी सुना है कि गोदना गुदाए जाने के बाद शरीर में विकार नहीं उत्पन्न होते । जो भी हो, देह अलंकरण का समय कष्टप्रद तो होता ही है, इसीसे मन को उस पीड़ा से हटाए रखने के लिए गोदपरनी इस-अलंकरण के समय इसी कला से जुड़े गीत भी गाती चलती है । अंगप्रदेश में गोदना से जुड़े गीत आज भी बेहद ही लोकप्रिय हैं, जितनी कि कभी यह देह-अलंकरण की कला रही होगी ।

गोपीचंद : गोपीचंद अंगिका लोकगाथा का नायक है । बहुत लोग गोपीचंद को नाथपंथियों की काल्पनिक कथा मानते हैं, लेकिन बुकानन और ग्रियर्सन इसकी ऐतिहासिकता से इनकार नहीं करते। विद्वान स्वीकारते हैं कि गोपीचंद के पिता माणिकचंद पालवंशी राजा धर्मपाल के भाई थे और गोपीचंद की माता मैनावती ज्येष्ठ गौड़ के राजा की सुपुत्री। मैनावती योगशक्ति से सम्पन्न थी; यही कारण था कि जब माणिकचंद की मृत्यु हुई, तो उसने यमराज को ही अपनी शक्ति से बांध लिया था, तब गुरु गोरखनाथ के यह कहने पर कि माणिकचंद से ही गोपीचंद पुत्र की प्राप्ति होगी लेकिन यह भी कहा कि पुत्र अठारह वर्ष से अधिक जीवित न रह पायेगा—तो मैनावती ने यमलोक को मुक्त कर दिया था । समय में गोपीचंद का जन्म हुआ ।

कम उम्र में गोपीचंद का विवाह राजा हरिश्चंद की दो पुत्रियों—अदुना और पदुना से हुआ, लेकिन मैनावती को मालूम था कि गोपीचंद की आयु अठारह वर्ष से अधिक नहीं है, इसीसे उसने चम्पा के हाड़ि सिद्ध के पास उसे उसका शिष्य बनने भेज दिया, लेकिन उस सिद्ध ने गोपीचंद की परीक्षा के लिए चम्पा की हीरा नाम की वारांगना के हाथों सौंप दिया, जहाँ गोपीचंद अनैतिक दुर्व्यवहार का शिकार होता रहा । इसकी खबर लगते ही मैनावती ने सिद्ध से सम्पर्क किया और हीरा से गोपीचंद को मुक्त करवाया । इस तरह वह मुक्त होकर ज्येष्ठ गौड़ (जेठौर) लौट आया, राजमहल में उत्सव का माहौल फैल गया ।

अंगिका लोकगाथा में गोपीचंद की इतनी ही कथा मिलती है ।

धनंजय मिश्र के हिन्दी उपन्यास में भी उतनी ही क्या है, लेकिन एक योगी के मुँह से सुनी कथा के अनुसार—चूँकि गोपीचंद की उम्र बहुत संक्षिप्त थी, इसीसे गोरखनाथ का शिष्य होकर योगी हो गया था । माँ की अनुमति भी उसे प्राप्त थी ।

अंगिका लोकगाथा की यह कथा इतनी लोकप्रिय है कि यह पंजाब से लेकर बंगाल तक व्याप्त है । डॉ. मनोज पाण्डेय के द्वारा संकलित गोपीचंद लोकगाथा का एक अंश मुझे भी उन्होंने उपलब्ध कराया था।

घाघ : घाघ कृषि और मौसम के कवि थे, जिनका जन्म अंगप्रदेश के उस क्षेत्र के आसपास हुआ था, जहाँ कभी विक्रमशिला विश्वविद्यालय का ज्ञान उत्तरी, पश्चिमी और पूवी दुनिया में फैल रहा था।

'अंगिका साहित्य केरो इतिहास' में डॉ तेजनारायण कुशवाहा ने घाघ के संबंध में जानकारी प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि घाघ के पूर्वज, जो बादशाह अकबर के शासकीय कार्यों से जुड़े थे—बाद में भागलपुर के घोघा अंचल में आकर बस गये थे और यहीं बालक घाघ का जन्म हुआ—बालक का नाम भी ग्राम के आधार पर ही गाँववाले ने रख दिया था।

कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्मे घाघ ने दोहा और चौपाई छंदों में कृषि और मौसम संबंधी जो जानकारियां दी हैं, वे इतने वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं कि उनकी उक्तियाँ कुछ-कुछ भाषा बदलाव के साथ पूरे उत्तर भारत में प्रचलित हैं। इनकी काव्यभाषा पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी की अंगिका भाषा के करीब की है, इसी कारण डॉ. कुशवाहा ने अगर इनका समय १५४६ से १६०५ ई माना है, तो सही ही है।

घाटो-घटेसर : दक्षिण अंगप्रदेश का लोकपर्व। यह पर्व चैत के अंतिम सप्ताह से आरम्भ होकर बैशाख के आरंभ में समाप्त होता है, जिसमें कुम्हार के द्वारा बनाई गई मूर्तियाँ को गाँव-टोले की किशोरियाँ

अपने-अपने घर लाती हैं। प्रवेश के समय उन मूर्त्तियों का परिछन होता है, जिसे लोकभाषा में पण्ढार कहा जाता है और फिर मिट्टी की बनाई ग्यारह पिंडियों पर उन मूर्तियों को स्थापित किया जाता है। चावल की पिठाली और रंगों से उन मूर्त्तियों को रंगा जाता है। ये मूर्त्तियां आकार में बड़ी-छोटी होती हैं, जो अंग्रेजी के उलटे अक्षर 'यू' (∩) पर रखे 'ओ' (O) अक्षर-सी होती हैं। रंग से रंगी-रंगी मूर्तियाँ। इन मूर्त्तियों में पाँच मूर्त्तियाँ तो घटेसर के भाई ही हैं। बाकी में कोतवाल धनका भी है, सुगा भी है, कागा भी और डलिया भी। मूर्तियों को दुग्धस्नान भी कराया जाता है और संध्या गीत भी रोज-रोज होते हैं। सप्ताहान्त में उमंग, उल्लास, गीत-गायन के साथ ये मूर्तियाँ नदी या पोखर में विसर्जित होती हैं। घाटो-घटेसर भी भाई-बहन के अटूट संबंध का ही लोकपर्व है।

घुघली : घुघली, अंगिका लोकगाथा घुघली घटमा का नायक है। इस लोकगाथा के अनुसार राजा रैया रणपाल की रानी जब गर्भवती थी तभी सत्ता के लोभ में रानी के पाँचो भाइयों ने जो घटमा के नाम से जाने जाते थे, रैया रणपाल की हत्या कर देते हैं। संकट में अपने प्राणों को पाकर रानी राज्य से निकल कर किसी अन्य राज्य में शरण लेती है और वहीं एक पुत्र को जन्म देती है, जो आगे चलकर अपने पाँचो मामाओं की हत्याकर अपने पिता की मौत का बदला लेता है। इसी बालक का नाम घुघली है। यहाँ इस ओर संकेत कर देना आवश्यक होगा कि घुघली को कुछ लेकगायक छतरी चौहान के नाम से भी जानते हैं यह इसलिए कि घुघली-घटमा और छतरी चौहान की कथा एक ही है। दोनों के गायन और भाषा में मुझे कुछ अंतर अवश्य मिला लेकिन यह तो मौखिक परम्परा में लोकगाथा के होने के कारण स्वाभाविक ही है।

घोघन महाराज : घोघन महाराज का जन्म अंगुत्तराप (पुराने भागलपुर) के सहरसा जिले के यदुवंशी परिवार में हुआ था । लोकश्रुति के अनुसार घोघन महाराज जन्म से शिव के अनन्य भक्त थे । लोकविश्वास

है, एक बार चिंतामणि नाम का एक व्यक्ति घोघन महाराजा से सिंहेसर मंदिर में पहले दूध चढ़ाने की हठधर्मिता कर बैठा। संभवतः यह विवाद इसलिए ही हुआ हो कि चिंतामणि विधर्मी होकर दूध चढ़ाने पर उतारू हो। यही कारण है कि घोघन महाराज के प्रहार से जब उसकी मृत्यु हो गई, तो घोघन, गाजी घोघन कहलाने लगे। बाद में उन्होंने अपनी अलग बस्ती बसाई, जो घोघनपट्टी के नाम से जाना गया। उसी स्थल पर उनसे एक बाघ की भिड़न्त हो गई और बाघ मारा गया। यह देख कर बाघिन घोघन महाराज पर आक्रमण को हुई, तो उन्होंने स्त्री-वध की अनिच्छा के कारण अपने बायें हाथ की छोटी अंगुली को चीर कर बाघिन की ओर कर दिया, जिसके कारण ही उनकी मृत्यु भी हो गई। लोकविश्वास के अनुसार ही उनकी मृत्यु भादो की शुक्ल चौथ को हुई थी, इसीसे प्रतिवर्ष उक्त तिथि पर उनकी स्मृति में मेले का आयोजन भी हुआ करता है, ज्ञात हुआ है कि जहाँ पर उनकी मृत्यु हुई थी, उसी स्थल पर उनकी स्मृति में एक मंदिर भी बना हुआ है, जिसमें उनकी स्मृति में उनके लाठी-चटकन रखे हुये हैं ।

चंदनवाला : चंदनबाला चंपा के नरेश दधिवाहन की पुत्री थी जिसके बचपन का नाम वसुमति था। वह जब किशोरी ही थी, तो कौशाम्बी के राजा शतानिक ने चंपा पर आकमण कर दिया था। यह वह समय था जब भगवान महावीर कई माह से भूखे-प्यासे ही कौशाम्बी में भ्रमण कर रहे थे। शतानिक के एक सैनिक ने दधिवाहन की पत्नी धारिणी और पुत्री वसुमति को बंदी बना लिया। उसकी इच्छा धारिणी को अपनी पत्नी बनाने और वसुमति को बाजार में बेच देने की थी लेकिन धारिणी ने उसकी वासना को जानते ही आत्महत्या कर ली। निराश उस सैनिक ने वसुमति को धनावह नाम के एक धनिक के हाथों बेच दिया। कसुमति रुप-गुण से संपन्न होने के कारण लोगों के बीच वह चंदना के नाम से लोकप्रिय हो चली थी । धनावह भी उसे खूब मानते थे। धीरे-धीरे चंदना पर उम्र का निखार और भी छाने लगा था और इसी के साथ धनावह की पत्नी मूला का संदेह भी बढ़ता गया कि कहीं इसके रूप-मोह में फँस कर उसका पति उसे छोड़ न दे; इसी से एक

बार जब धनावह व्यापार के लिए परदेश गये हुये थे, मूला ने चंदना के, न केवल नाई से उसके केश कटवा दिए बल्कि जंजीरों में बांधकर उसे घर के गुप्त स्थान में भी रखवा दिया । जब धनावह घर लौटे, तो तीन दिनों तक चंदना के बारे में पत्नी के अतिरिक्त अन्य लोगों से पूछते रहे लेकिन सभी ने चुप्पी साध ली थी । अंत में घर की एक बूढ़ी दासी ने सारी बातें बताईं। धनिक ने तुरत चंदना को बेड़ियों से मुक्त किया—देखा गया कि उसके लिए जो अन्न भेजे जाते थे, उन्हें भी उसने ग्रहण भी नहीं किया था। कि उसी समय भगवान महावीर का उसी ओर आना हुआ । उनका प्रण ही था कि वह तभी अन्न ग्रहण करेंगे, जब कोई केशहीन स्त्री—जो बेड़ियों से बंधी हो और कई दिनों से अन्न न ग्रहण किया हो—उन्हें भोजन कराए और ये सारी बातें चंदना के साथ होने के कारण भगवान महावीर ने उसके हाथों से अपने पात्र में अन्न ग्रहण कर अपने प्रण को छोड़ दिया—इसके साथ ही चंदना भगवान महावीर की शिष्या हो गयी और इस तरह उनकी प्रथम शिष्या बनी।

चकेवा : सामा-चकेवा उत्तर अंग में प्रचलित विशिष्ट लोकपर्व है, जो कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की सातवीं रात से आरंभ होकर कार्तिक पूर्णिमा की रात में समाप्त होता है। इस पर्व में मिट्टी के छोटे-छोटे पुतले गढ़े जाते हैं, जो सामा, चकेवा, सतभैया और चुगला के पुतले होते हैं। इन पुतलों में चुगला की विशिष्ट पहचान होती है, जिसके दो मुँह होते हैं—जो दो रंगों से रंगे होते हैं। लंबी चोटी, लंबी दाड़ी के साथ सब कुछ अलग-अलग।

पर्व की समाप्ति तक स्त्रियां लोकगीत गाती रहती हैं। विसर्जन के दिन चुगले को तो कहीं राह में ही फेंक दिया जाता है लेकिन सामा के लिए केले के तने की डोली बनाई जाती है। काजल लगाया जाता है, फिर उसे नदी या पोखर में हिलकोर के साथ आगे कर दिया जाता है। यह सामा को ससुराल भेजने का संकेत है। फिर घर से आईं बहनें उस अवसर पर भाई के फाँड़े भरने के साथ गीत गाती हुई घर लौट आती हैं ।

चम्पा देवी : अंग प्रदेश की देवी। इतिहासकार हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ के अनुसार सिंहेश्वर स्थान के कई गाँवों शंकरपुर, निशिहर पुर के मंदिरों में बाँतर (किरात) जाति द्वारा चम्पा देवी की पूजा की जाती है। वहाँ लोकदेवी चम्पा की मूर्ति भी स्थापित है। श्रीशलभ के मतानुसार सिंहेश्वर थान को चम्पारण्य तीर्थ न मानना ऐतिहासिक भूल होगी। यहाँ यह बता देना आवश्यक होगा कि अंगप्रदेश का उत्तरी भाग चम्पारण्य ही कहा जाता था क्योंकि यह अंगदेश की राजधानी चंपा का अरण्य प्रदेश था।

चिलका महाराज : चिलका महाराज यदुवंशी लोकदेव हैं, जिनके संबंध में कोई उल्लेखनीय कथा या गाथा नहीं मिलती, सिर्फ इसके कि इनका जन्म अंगुत्तराप के मधेपुरा के मुरलीगंज में हुआ था, जहाँ इनकी समाधि पर मंदिर होने की भी सूचना मिली है। चिलका महाराज का समय सोलहवीं के उत्तरार्द्ध या सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

चूहड़ : चूहड़ सामा-चकेवा लाकपर्व का एक पात्र है, जिसे लोकमानस चुगला नाम से भी जानता है। कथा है कि सामा (श्यामा) कृष्ण की बहन अपने आश्रम के वातावरण में स्वछंद विहार करती थी, जिसके रूप पर मुग्ध चूहड़ उसे अपनी स्त्री बनाना चाहता था लेकिन सामा का ब्याह ऋषि चार्वाक से हो गया। अब वह और भी निर्भय होकर विचरण करती। इस बात से जलकर चूहड़ ने कृष्ण से उसकी शिकायत कर दी। क्रोधित कृष्ण ने सामा को पक्षी बनने का शाप दे दिया; जब ऋषि चार्वाक को यह मालूम हुआ, तो अपने तप-बल से वह भी पक्षी बन सामा के साथ हो गये। सारी घटनाएं जब सामा के सगे भाई शंब को मालूम हुई, तो उसने अपनी भक्ति से ईश्वर को प्रसन्न कर, उनके पुनः मनुष्य रूप में आ जाने की याचना की। इस पर ईश्वर ने कहा कि अगर धरती पर मनुष्य कार्तिक पूर्णिमा में चूहड़ को जलाने के साथ सामा-चकेवा के कल्याण की कामना करे, तो दोनों पुनः मनुष्य रूप

धारण कर लेंगे और तभी से सामा-चकेवा की पूजन के साथ चूहड़ को जलाने की प्रथा चल पड़ी। यह कथा मुझे खगड़िया के खरैता निवासी साहित्यकार चंद्रप्रकाश जगप्रिय से प्राप्त हुई थी।

चैता : अंग जनपद में चैतावर के नाम से प्रसिद्ध चैता चैत मास में गाया जाने वाला लोकप्रिय गीत है । चैत मास में ही गाये जाने के कारण उसका नाम चैतावर या चैता है । इसकी दो प्रमुख गायन-शैलियों के कारण चैतावर दो वर्गों में बँटा मिलता है—भलकुटिया चैता और चैतावर । चैतावर जहाँ एकल गान है, वहाँ झलकुटिया चैता समूह गान है। दोनों की गायन-शैली में भी काफी अन्तर है । चैता, जिसे अंगवासी चैती भी कह कर पुकारते हैं, के गायन में वाद्ययंत्र की आवश्यकता नहीं होती और इसकी मुख्य प्रवृत्ति विप्रलंभ शृंगार की अभिव्यक्ति है, लेकिन इसमें प्रकृति के सौन्दर्य और रति संयोग चित्र इसके लिए वर्जित प्रदेश नहीं हैं । झलकुटिया चैतावर दलों में विभक्त गायक झाल कूट कर गाते हैं, झाल कूटने की प्रधानता के कारण ही यह झलकुटिया चैता के नाम से प्रसिद्ध है, इसके गायन के आरोह-अवरोह में काफी तीव्रता होती है । फगुआ गीतों की तरह झलकुटिया चैता के गायन की स्थिति में गायक जमीन पर ठेहुने को टिकाए और ऐड़ी के बल थोड़े उठे भावावेश में गायन करते हैं, जो सुननेवालों के पूरे शरीर को झंकृत कर देता है, जबकि चैता की गायन-विधि मन्थर गति में आरोह-अवरोह के साथ आगे बढ़ती है जिसमें द्रावकता और पेशलता का अदभुत समन्वय होता है । संभवतः इसी दावकता के कारण ही इसे 'चैती' कहने की भी परम्परा है ।

चौमासा : हिन्दुवर्ष के चार महीने—आषाढ़, सावन, भादो और कार्तिक का छंदबद्ध चित्रण साहित्य में चौमासा के नाम से प्रसिद्ध है । यह किसी निश्चित छंद या स्वर में प्रचलित हो, ऐसा नहीं है लेकिन चौमासा के गीतों में, विशेष कर नारी की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति आम बात है। यथाः

प्रथम मास आषाढ़ हे सखि साजि आयल जलधार हे ।
राजा दशरथ वचन कारण कैकइ देल बनवास हे ।।
साओन हे सखि सर्व सोहाओन एक तें राति अन्हार हे ।
शोक करलथिन माता कौशिल्या राम गेल वनवास हे ।।
आसिन हे सखि आस लागाओल सबके पुरियौ आस हे ।
एक नै पुरै जों तें रानी केकइ के देलखिन वनवास हे ।।
कातिक हे सखि पर्व लगतु हैं सब सखि गंगा स्नान हे ।
रथ साजल ठाढ़ लछुमन करत जे रङ-रङ खेल हे ।।
अगहन हे सखि अग्र सोहाओन चहुदिश उपजल धान हे
राजा दशरथ घरमे पड़ला तेजि देलखिन प्राण हे ।।

छठ : कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की चतुथी तिथि से आरंभ से होकर सप्तमी को समाप्त होनेवाला अंगप्रदेश का महापर्व । नहाय-खाय से शुरु होकर खरना, उपवास, उपवास काल में ही सूर्य देवता को सूप में नारियल, केला, नींबू, नारंगी, मूली लिए सायंकालीन अर्ध्य, छठगीतों का शांत लहराता समुद्र, फिर सप्तमी को भोर के अर्घ्य के साथ पर्व की समाप्ति ऐसा ही होता है यह पर्व। लोकविश्वास है कि इस पर्व का आरंभ महाभारत काल से ही अंगप्रदेश में प्रचालित है और अंगवासियों को यह संस्कृति विरासत में महादानी कर्ण से मिली है जिनकी सूर्योपासना की कथा अदितीय है।

छेछन डोम : डॉ. अभयकांत चौधरी और नरेश पाण्डेय चकोर द्वारा संपादित लोकगाथा काव्य 'सलेस' से ज्ञात होता है छेछन डोम सलस के प्रिय मित्र थे, जिन्होंने एक विचित्र सूअर को पाल रखा था। सलहेस के घर से निकल जाने के बाद छेछन उनकी खोज में नेपाल की ओर निकल गये थे । तांत्रिक क्रियाओं का साधक होने के कारण सलहेस को वह पुनर्जीवन भी देते हैं। छेछन डोम के संबंध में यह भी कथा मिलती है कि वह बेहद शक्तिशाली पुरुष थे, जिनके पास हमेशा बारह सेर का काता रहता था । इसी काते से उन्होंने एकबार कृष्णा राम

(संभवतः सहरसावाले यदुवंशी लोकदेव) के बाँसवन को आधा काट डाला था, जिसकी खबर अपने छोटे भाई सुबरन से प्राप्त कर कृष्णाराम ने अपना हाथी छेछन के पास भेजा था जिस हाथी ने उस समय सो रहे छेछन की गर्दन को उसके बगल में पड़े काते पर लुढ़का दिया था, और उस पर अपना पैर रख दिया था, जिससे उनका सिर धड़ से अलग हो गया । नेपाल के इस स्थल पर, जहाँ छेछन का सिर धड़ से अलग हो गया था, आज भी उनकी पूजा होती है, ऐसा मेरे एक मित्र ने कभी बताया था । छेछन डोम अपनी जाति में पूजनीय हैं, क्योंकि वह अपनी जाति के लोकदेव हैं ।

जँतसार : जाँते पर गेहू या अन्य अन्न की पिसाई के समय स्त्रियां जो गीत गाती हैं, वह गीत ही जँतसार है। ये गीत निःसंदेह बहुत कर्णप्रिय होते हैं जिन गीतों में स्त्री मन बहुत खुलकर सामने आता है। विशेष कर नेहर की स्मृतियाँ और ससुराल के कष्ट तो जँतसार में और भी प्रकट हैं। श्री नरेश पाण्डेय चकोर ने अंगिका जँतसार का एक सुंदर संकलन प्रकाशित किया है जो शेखर प्रकाशन पटना से प्रकाशित है।

जनार : जनार को अंगिकाभाषी छाँकी भी कहते हैं। किसी विशेष लोकदेव की पूजा में जो बना हुआ खीर या दूध चढ़ाया जाता है, वही जनार या छाँकी के नाम से लोक में जाना जाता है ।

जयमंगला गढ़ : अब बेगुसराय के निकट विशाल प्राचीन दुर्ग का खंडहर, जो साढ़े तीन सौ बीघे में विस्तृत है। प्राचीन काल में यह किसी हिन्दू राज्य का गढ़ रहा है, यह इसमें प्राप्त जय मंगला देवी की खंडित मूर्ति से ज्ञात होता है।

जलपा थान : जलपा थान मुंगेर के सूर्यगढ़ा अंचल में स्थित है जो जलपा देवी के नाम पर है। इतिहासकार रामरघुवीर ने एक पद का उल्लेख किया है, जिसमें जालपा देवी भवानी के लिए आई संज्ञा है।

जालपा थान में सिंहवाहनी भगवती की मूर्ति भी है लेकिन उसी स्थल पर बुद्ध की कुछ खंडित प्रतिमाएं भी हैं। रामरघुवीर जी के अनुसार 'पा' शब्द सिद्धों के लिए आदरसूचक शब्द है, इसी से यह अनुमान करना गलत नहीं है कि जालपा नामक इस स्थान पर कोई बौद्ध साधिका होगी, जो कालान्तर में लोकजीवन में हिन्दु देवी की तरह पूजित हो गई हो।

जातरा : कुछ लोगों में यह भ्रान्ति अब भी है कि जातरा बंगाल की लोक नाट्य-शैली है, जबकि जातरा, जिसका जन्म धार्मिक-जुलूस से हुआ है, किसी-न-किसी रूप में सारे देश में च्रचलित है । 'द दंडियन थियेटर' में E. P. Harwitz ने जातरा को वैदिक युग से प्रचलित माना है । यह अलग बात है कि बंगला नाटककार गिरीषचन्द्र घोष ने यात्रा-मंडली के सहयोग से जिन बंगला नाटकों का सृजन किया, वे बंगाल के साथ अंग में भी काफी लोकप्रिय हुए । भागलपुर के चम्पानगर में बंगला जातरा को लोकप्रिय बनाने में अगर शारदा जातरा पार्टी का विशेष हाथ था, तो खड़ी बोली मश्रित अंगिका के जातरा को लोकप्रिय बनाने में भागलपुर के प्रसिद्ध रंगकर्मी और लेखक हरिकुंज का महत्वपूर्ण योगदान रहा । इनकी अपनी एक जातरा पार्टी ही थी जो ई. १९४४ से ई. १९८३ तक अत्यधिक सक्रिय रही, इसी तरह वर्त्तमान के बाँका जिला में अंगिका-हिन्दी जातरा को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने में दुर्गा ऑपेरा पार्टी की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही । यह ऑपेरा पार्टी रजौन थाना के रुपसा ग्राम में केन्द्रित थी, जिसके निर्देशक थे भवेश चन्द्र दास । रुपसा में जातरा ई. उन्नीस सौ छयालीस-सैंतालीस से लेकर उन्नीस सौ पचपन तक विधिवत होता रहा, जो माघी पूर्णिमा में रुपसा के समीपवर्त्ती गाँव डुमरामा और सरस्वती पूजा के वसंतोत्सव पर रुपसा में ही अभिनीत होता था । इस जातरा में सक्रिय रहे रुपसा ग्राम के ही रंगकर्मी श्री सच्चिदानंद स्नेही ने जिन अन्य प्रमुख रंगकर्मियों की सूची मुझे दी, उनमें प्रमुख नाम हैं—रुपसा के ही रुद्रेश्वरी मंडल, आनन्दी मंडल, गोरे लाल सिन्हा, गंगा नारायण सिन्हा, सुधीर

चक्रवती, अमरेश दास, सुबोध सिन्हा, गोपाल तिवारी; डुमरामा के कटकी दा, सिंहनान के रमणी मोहन घोष और रुपसा के ही भोला दास। इसी ग्राम के शिक्षक नरसिंह प्रसाद सिन्हा जातरा नाटकों को अभिनेय योग्य बनाते थे । इनके द्वारा 'निराश प्रेमी' जातरा का संक्षिप्त नाट्य-रूप बहुत ही लोकप्रिय हुआ था । उन्नीस सौ पचपन में श्री दुर्गा ऑपेरा पार्टी के टूट जाने से अंग जनपद में जातरा लोकनाट्य की परम्परा ही जैसे थम गई । अगर यह हाल तक जीवित रहा तो हरिकुंज जी के ही रंगकर्म के कारण, लेकिन ई. १९८४ में इनके निधन के बाद जातरा की साँसों पर जैसे प्रलय का ही पहरा लग गया है ।

जातियावाहन : जातियावाहन विभिन्न जातियों के अपने-अपने नियम है, जिनसे वे जातियां बंधी होती हैं, या उन नियमों को मानने के लिए बाध्य होती हैं। इन नियमों को मनवानेवाले व्यक्ति को मरड़ कहने की परम्परा अंगप्रदेश में आम है ।

जीतिया पर्व : वर्ष के आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को आने वाला यह पर्व संतान की दीर्घार्यु की कामना से जुड़ा है, जिसे हिन्दु पुत्रवती माताएं चौबीस घंटे के निर्जला उपवास में रहकर संपन्न करती हैं। इस व्रत से एक कथा भी जुड़ी है जो निम्नांकित है—यह संयोग ही था कि जैसे ही धोये हुये गेहूँ को आँगन में सूखने दिया गया, आकाश में बादल दूर-दूर तक छा गये । पानी बरसने की संभावना भी बनने लगी । चिंतित ननद ने भाभी से पूछा—अब क्या होगा ? तो भाभी ने मजाक में कहा—होगा क्या, अगर तुम एक दिन के लिए सूर्य के पास चली जाओ, तो धूप भी निकल आयेगी और गेहूँ भी सूख जायेगा ।

यह सुन कर ननद ने भी कह दिया—तो इसमें क्या है, पहले धूप तो उग जाए, फिर सूर्य के पास भी एक दिन चली जाऊँगी ।

ननद का इतना कहना भर था कि आँगन में धूप खिल आई । दोनों ने देखा—बादलों के बीच सूर्य चमक रहा था । लेकिन दोनों ने इसे संयोग ही समझा कि तभी एक दिन सूर्य ननद के समक्ष उपस्थित

हो गया और बीती घटना की याद दिलाई । सुनते ही ननद सहम गई।

यह देखकर सूर्य ने कहा, तुम कुँवारी हो, इसीसे बस इतना करो कि घर के पिछवाड़े जो साग हलहला रहा है, उसी की कुछ पत्तियाँ खाकर अपने वचन के बंधन से मुक्त हो जाओ । इतना कह सूर्य अदृश्य हो गया । भयभीत ननद ने वैसा ही किया, जैसा सूर्य ने कहा था ।

समय बीता और ननद गर्भवती बन गई । फिर एक बालक का भी जन्म हुआ । ननद लोगों की नजरों में पतिता बन गई । एक तो कुँवारे में ही माँ बन गई, फिर उस बच्चे का पिता भी नामालूम । दुखिता ननद ने अपनी पीड़ा भाभी से सुनाई तो भाभी ने कहा—इसमें दुखित होने की क्या बात है ? तुम सूर्य के पास उसी वक्त पहुँच जाओ, जिस वक्त वह अपने रथ पर बाहर हो निकलता है और उसीसे पूछो कि मेरे बच्चे का पिता कौन है ?

ननद ने वैसा ही किया । रथ पर सूर्य के निकलते ही उसने रास्ता रोकते हुए पूछा कि आखिर मेरे बच्चे का पिता कौन है ? इसे सुनकर सूर्य ने कहा—मैं ही तुम्हारे बच्चे का पिता हूँ । तुम्हें चिन्तित होने की जरूरत नहीं । वह मेरी ही तरह जगत में पूजित होगा । इतना ही नहीं, पहले मेरे पुत्र की पूजा होगी, तब मेरी । और तभी से आश्विन माह में पुत्र-पर्व के रूप में जितिया और कार्तिक में सूर्य-पूजा के लिए छठ पर्व का प्रारम्भ हुआ ।

जुनौठ : नई फसल को बाँधने के लिए फसल के नये पौधे काम में लाए जाते हैं, उनसे अन्न अलग कर लिए जाते हैं । अलग किए अन्न ही जुनौठ कहाते हैं ।

जेठ रैयत : मौजा (खेत) के प्रमुख रैयत (जोतदार) ही जेठ रैयत कहाता हैं ।

जेठौंस : परिवार में बड़े भाई को जेठ कहने की परम्परा आम है ।

विभाजन या अन्य अवसर पर जेठ को कुछ विशेष प्राप्त होना ही जेठौंस है ।

जोगीरा : जोगीरा या जोगीड़ा नाम से विख्यात यह होली-गीत अपनी गायन-शैली और विषय को लेकर उन होली-गीतों से एकदम अलग है, जिन्हें अंग प्रदेश में फगुआ, होली, घमार और चौताल कहते हैं । अगर गीतों के सभी प्रकार को सामने रखें, तो फगुआ में देशीपन (गँवई शैली) बहुत अधिक मिलती है और ऐसे गीत समाज-टोले के बीच ही गाये जाते हैं, लेकिन जोगीरा की स्थिति भिन्न है । अपनी बातों में कहीं-कहीं अत्यधिक अश्लीलता के कारण बस्ती-समाज-टोले से दूर एकान्त स्थान में ही जोगीरा का रास रचता है । जोगीरा भी समूह-गीत ही है, लेकिन इसमें एक मुख्य गायक होता है, बाकी लोग 'कहो जी—सारा रा रा रा रा' की आवृत्ति में साथ देते हैं या फिर मुख्य गायक की कही बातों में 'हाय-हाय', 'सही छै' कह कर समर्थन करते है । अंग महाजनपद में जो जोगीरा-गीत मिलते हैं, उनमें छंदों के विविधता और उन्हीं के अनुसार एक ही गीत में लय-ताल के अन्तर से अद्‌भुत पेशलता पाई जाती है । प्राप्त जोगीरा से यह पता चलता है कि एक जोगीरा में भक्ति-राजनीति से लेकर होली की मौज.मस्ती तक की बातें बेरोक-टोक आती जाती हैं, जैसे कि अंगिका के साथ खड़ी बोली के वाक्य भी बिना किसी अवरोध के ।

पहिलों सुमरौं सरस्वती दूजे दुरगा माय
जंगल में जोगीरा गावौं कंठ विराजै आय
फिर बोल बोल कि सा रा रा रा
गोरे आया इंग्लैंड से, बोले इंगलिश बोल
गाँधी जी ने झापड़ मारा, भागा नुंगी खोल
फिर बोल बोल कि सा रा रा रा
हिरिया के बेटी किरिया बैठल दुकान पर
गला में शोभै सिकरी, मोती छै कान पर
एक नजर चल गेलै पनमा दुकान पर

कत्तें सिनी कट गेलै किरिया के जान पर
फिर बोल बोल कि सा रा रा रा ।

जोति पंजियार : लोकमान्यता के अनुसार ज्योति पंजियार का जन्म चम्पापुर के आसपास भागलपुर के कहलगाँव स्थित घोघा ग्राम में हुआ था, जो तांत्रिक विद्या में निपुण थे और उन्होंने यमराज को कुलदेवता के रूप में स्वीकार किया था। एक बार यमराज ही उनकी परीक्षा लेने उनके आश्रम पर पहुँच गये; जिस समय वह गहबर में संपादित होनेवाले कार्य में लगे हुये थे; साधुवेशधारी यमराज ने ज्योति के आने में देर के कारण, शापित कर दिया कि वह कुष्ठ रोगी हो जाये । वह अति दरिद्र हो जाये और शाप के अनुसार ही वह निर्धन भी हो गये और कुष्ठ के रोगी भी। ऐसी अवस्था में वह घर छोड़कर अपनी बहन के घर पहुँच गये, लेकिन उस हाल में देखकर बहन ने उन्हें पहचानने से भी इनकार कर दिया, वहाँ से निकल कर वह आगमहल पहुँचे जहाँ उनका एक तांत्रिक मित्र मिल गया । मिलते ही उसने सारी बातें जान ली और उसने ज्योति को बारह वर्ष के लिए कदली वन (खगड़िया जिले का एक पुराना पौराणिक घना जंगल) में यमराज की आराधना करने की कहा।

तांत्रिक के बताए निर्देश पर ज्योति कदलीवन की ओर निकल गये । चलते हुए एक शमी के वृक्ष के पास आराम के लिए पहुँचे, लेकिन शाप के कारण वह शमी वृक्ष तुरत जल गया, प्यास लगी, मरगांग के निकट पहुँचे; तो वह धार भी सूख गई । तभी उसकी नजर आगमहल के राजभवन पर गई, और देखा कि राजा-रानी उसकी ही प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ हैं ।

ज्योति उस राजभवन में काफी सम्मानित हुये, तो उन्होंने राजा से उसके उदास चेहरे के बारे में पूछा और यह जानकर कि वह पुत्रहीन है, राजा से कहा कि एक सुनहले रंग का एक पाठा पाले और बारह वर्ष के बाद मेरे लौटने पर ही उसे खोले, रानी को अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी । यह कह कर ज्योंति जैसे ही भवन से निकले, तो जोरों की आंधी उठी और उस आँधी में ज्योति उड़ते हुये एक जंगल पहुँच गये।

वह जंगल ही कदली वन था । उन्होंने वहाँ धर्मराज का गहवर बनाया और चौदह वर्ष तक यमराज की तपस्या की, तो उनका कुष्ठ भी जाता रहा और विशेष सिद्धि की भी प्राप्ति हो गई । वह गहबर को लिए कदलीवन से लौट कर राजमहल पहुँचे, तो राजा से पता चला कि वह पाठा तो भूख-प्यास के कारण खूंटे से बंधा ही मर गया । ज्योति ने कहा—नहीं, वह पाठा तो जीवित है। यह कहते ही पाठा जीवित हो उठा, तो उन्होंने कहा, तुम्हारा पुत्र कदली वन में शिकार खेलने गया है, वह लौट ही रहा है और राजा ने देखा कि सचमुच में उसका ही पुत्र लौट आया है । ज्योति वहाँ से निकल कर आगे बढ़े, तो मरगांग पुनः जलवाली हो गई, शमी का पेड़ फिर जीवित हो गया और सबको आशीर्वाद देते हुये ज्योति पंजियार अपने गाँव चम्पापुर लौट आये ।

झरनी : मुहर्रम के अवसर पर होनेवाला एक विशेष नृत्य, जिसमें लोकगीत का गायन भी होता है। झरनी नृत्य के अवसर पर मुस्लिम महिलाएं नहीं देखी जातीं। अंगप्रदेश में झरनी के अवसर गाये जानेवाले झरनीगीत की भाषा अंगिका भाषा ही होती है। एक गीत प्रस्तुत है :

हाय रे हाय ऐंगना बोहारै में जे सास
एक्के सिकिया लचलै रे हाय
हाय रे हाय ओही लैके सासू
गिरिया पढ़ै रे हाय
जनू देहू गारी हे सासु
भैया-बाप खोखिया रे हाय
मोर भैया मोर अब्बा
अल्लाह कें मंगलियै रे हाय

(यह झरनी गीत मुझे डॉ. मनाज़िर आशिक़ हरगानवी से प्राप्त हुआ था। यह गीत अंगिका जतसार में भी एकाध शब्द के परिवर्तन के साथ प्राप्त है।)

झिझिया : झिझिया शारदीय नवरात्र की प्रथम रात्रि से अंतिम रात्री

तक आयोजित होनेवाला तांत्रिक नाच है, जिसमें छिद्रयुक्त घड़े में जलता दीया रखकर नृत्य किया जाता है। इस तांत्रिक नृत्य के पीछे भी एक लोककथा है कि किसी समय चित्रसेन नामक एक राजा अपने भतीजे वररुचि को सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाना चाहता था लेकिन रानी उससे विवाह की बात मन में पाल रही थी और जब वररुचि ने रानी की इच्छा को स्वीकारने से इनकार कर दिया, तो नाराज रानी कोपभवन जा बैठी—यह कहते हुए कि जब तक वह वररुचि के कलेजे पर स्नान नहीं करेगी, कोपभवन से नहीं निकलेगी। चतुर मंत्रियों के कारण वरुरुचि को भाग्य के भरोसे जंगल में छोड़ कर किसी जानवर का कलेजा लेकर सिपाही गया । रानी का कोप शांत हुआ। फिर ऐसा होता है कि एक बार राजा उसी जंगल से होकर पालकी पर निकल रहा था कि रास्ते में एक कहार की मृत्यु हो गई। यह खबर सुन जंगल का एक कहार वहाँ उपस्थित हुआ और पालकी को कंधे से लगा लिया। पालकी पर बैठे राजा को तभी एक पंक्ति याद आ गई और वह भी आधी ही। जब नये कहार ने वह पंक्ति सुनी, तो आधी और पंक्ति जोड़कर उसको पूरा कर दिया। चित्रसेन चौका, घूमकर देखा, तो पुत्र को पहचान लिया। वह उसे लेकर राज्य की ओर लौटने लगा, तो उस वररुचि की तांत्रिक डायन रक्षिका ने अपने आश्रम से ही मंत्र का प्रहार शुरू कर दिया । फिर क्या था, इसकी जानकारी राजा की पत्नी को भी हुई और उसने राजमहल से ही मंत्रप्रयोग शुरू कर दिया। डायन की हार तो हुई लेकिन भविष्य में और किसी मंत्र के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए रानी ने नवरात्र में नौ दिनों का तांत्रिक नृत्य किया, जो बाद में झिझिया नृत्य के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ। आजकल ताल निदेशिका श्वेता भारती के कारण गुप्त रूप से किए जानेवाले इस लोकनृत्य को काफी लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी है।

टोटका : लक्ष्यसिद्धि में बाधा की उपस्थिति की शंका होने पर तात्कालिक धार्मिक उपचार टोटका है। टोटका में आत्मिक लाभ की इच्छा ही प्रमुख होती है । इसमें किसी की हानि की कांक्षा नहीं होती।

टोना : लक्ष्यसिद्धि के लिए किया जाने तांत्रिक उपचार टोना है। टोटके में किसी की हानि का भाव निहित नहीं होता, जबकि टोना लक्ष्यसिद्धि के लिए किये गये ऐसे तांत्रिक-विधि-विधान हैं, जिनमे मार्ग के बाधक को हानि पहुँचाने की मंसा भी निहित होती है। अंगप्रदेश तंत्र का प्रमुख गढ़ रहा है, इसीसे टोटके और टोन इसकी लोकसंस्कृति के प्रमुख अंग भी हैं।

डाक : डाक अपने काव्य के विषय और काव्य-शैली को लेकर अंगिका के कृषि-कवि घाघ और भड्डरी के समकालीन प्रतीतते हैं। महाकवि सुमन सूरो और डॉ. तेज नारायण कुशवाहा ने अपनी-अपनी पुस्तकों में डाक के अंगिका कवि होने का तो उल्लेख किया है लेकिन इनके समय और जन्मस्थान के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया है। अवश्य ही लोकमत के आधार पर डॉ. प्रदीप प्रभात डाक को संथाल परगना के गोड्डा जिले का निवासी बताते हैं और इस संबंध में ये गोड्डा के एक तालाब का भी उल्लेख करते हैं, जिस पोखर के लाट से चोटी फँस जाने के कारण उनकी मृत्यु हुई थी : लोक में भी प्रचलित है कि डाक की मृत्यु उनकी भविष्यवाणी के अनुसार ही हुई थी । यदुकुल में जन्म लेने की बात तो उनकी उक्तियों से ही मिल जाती है :

तित्तिर पाँखे मेघ, विधवा करै सिंगार
उत बरसै इत उड़ै कहि गेलै डाक गुआर ।

डीहवार : गाँव के मूल वासस्थान को डीह कहते हैं लेकिन डीहवार का अर्थ उस स्थान के मालिक से नहीं, बल्कि इसका अर्थ ग्रामरक्षक देवता से है—जिसका निवासस्थान गॉव के पूरब-दक्षिण-सीमा पर किसी वृक्ष के नीचे माना जाता है।

डोमकच : 'डोमकच' अंग प्रदेश का अति लोकप्रिय लोक नाट्य है, जो समाज की दलित स्त्रियों द्वारा दलित स्त्रियों की पीड़ाओं की अभिव्यक्ति के लिए ही विवाह जैसे सामाजिक उत्सव पर प्रस्तुत होता

है, पत्नी की अवहेलना कर पति का परदेश गमन और परस्त्री के साथ उसके संबंध हो जाने से तिरस्कृता की करुण-स्थिति आदि का चित्रण डोमकच में होता है ।

तमाशा : तमाशा अंगप्रदेश में प्रचलित लोकनाट्यों का एक रूप, भेद है, जिसमें छंदबद्ध में संवाद की प्रमुखता होती है, जो संवाद हर हमेशा व्यवस्थित नहीं होते। ऐसे संवाद के साथ तमाशा में वाद्यसंगीत की प्रमुखता होती है। बीच-बीच में फूहड़ संवाद-गीत तमाशा में मनोरंजन भरने के लिए समाहित कर लिए जाते हैं। इसके नायक-नायिका अपने भेष-भूषा से, पूरी तरह से लोकनाट्य के पात्र ही दृष्टिगत होते हैं। आज भी खगड़िया जिले के खरैता ग्राम में तमाशा का अस्तित्व खत्म नहीं हुआ है—जबकि दक्षिण अंग में कभी यह अत्यधिक लोकप्रिय रहा—आज लगभग अस्तित्वविहीन हो चुका है।

तिखुर : कभी मीठे खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग आनेवाला तिखुर का उत्पादक क्षेत्र भागलपुर का कहलगाँव था और यहाँ से तैयार होकर पटना, बनारस, चटगाँव, दक्षिण भारत के त्रावणकोर के बाजारों तक पहुँचता था। इतिहासकार उदय शंकर झा चंचल ने जार्ज क्रिस्टोफर मॉलेसवर्थ बर्डवुड (१८४५) की रिपोर्ट पर विस्तार से लिखते हुए बताया है कि यह पाल और सेन की सेनाओं में खाद्य पदार्थ में शामिल हुआ करता था। देवता और यक्ष के भोग के रूप में इसका उपयोग तो होता ही था। सफेद शकरकंद से तैयार होनेवाला तिखुर प्राचीन काल में यवज नाम से जाना जाता था । तीन दशक पूर्व तक दही को गाढ़ा जमाने के लिए भी घरों में इसका प्रयोग होता रहा था।

तुलसी ब्याह : कार्तिक मास के देवोत्थान पर्व पर होनेवाला पर्व। इस पर्व के पीछे भी एक लोककथा कि वृन्दा और वेदांती—दोनों बहनों के घोर तप से प्रसन्न होकर भगवान ने उनकी इच्छा के अनुसार ही वेदांती को तो ईश्वर के प्रति भक्ति दे दी, और वृन्दा को शक्तिवान युवक, जिसके

कारण ही वृन्दा को समुद्र का पुत्र जालन्धर पति रूप में प्राप्त हुआ। लेकिन अपनी अनूठी शक्ति के कारण जालंधर उद्दंड होता चला गया, इतना उद्दंड कि भगवान शिव को भी परेशान करने लगा। वह पराजित भी नहीं हो सकता था, जब तक वृन्दा का सतीत्व सुरक्षित था। शिव के दुख को दूर करने के लिए विष्णु ने जालंधर का रूप धारण कर वृन्दा का शीलहरण किया, तो यह जानने पर वृन्दा ने विष्णु को श्याम पड़ जाने का शाप दिया और स्वयं सती हो गई। वृन्दा के दुख से दुखित विष्णु ने उसकी आत्मा को तुलसी का पौधा बना दिया और स्वयं शालिग्राम पत्थल के रूप में तुलसी के जीवन में आ गये। इसी से तुलसी को विष्णुप्रिया भी कहने की परंपरा है और दोनों के विवाह की भी, जो कार्तिक में वैवाहिक संस्कारों के साथ संपन्न होता है।

दशगात्र : किसी की मृत्यु के बाद उसके नये शरीर के लिए घर के कर्त्ता के द्वारा दस दिनों तक किये जानेवाले कर्मकांड दसगात्र कहे जाते हैं। लोकविश्वास है कि दस दिनों तक किये जानेवाले इस पिंडदान से मृतात्मा को दसो इन्द्रियों की पुनरप्राप्ति हो जाती है।

दानो : खेती के रक्षक लोकदेव जिनका निवास स्थान बहियार के खुले भाग में होता है और उनके पिंड पर किसी वृक्ष की छाया नहीं होती। साहित्यकार अनिरुद्ध प्रसाद विमल ने बताया कि खेती आरंभ के समय और फसल की कटाई के समय इनकी विशेष पूजा का विधान है। मुर्गे की बलि भी दी जाती है लेकिन नवान्न काल में सात्विकता के साथ इनकी पूजा की जाती है।

देवलो नृत्य : देवलो नृत्य भी कभी अंगप्रदेश में काफी लोकप्रिय रहा था लेकिन अब लगता है यह नृत्यनाटक डोमकच में विलीन हो गया है। कभी देवलो नाच की पहचान इसलिए अलग थी कि इसमें एक मंद बुद्धि की औरत के मूर्खतापूर्ण कार्य—जो कभ-कभी अश्लीलता तक पहुँच जाते थे—को दर्शाया जाता था और जिसे व्यवहारकुशल होने की

सीख दी जाती। यह लोकनृत्य देवलो नाच के नाम से इसलिए प्रसिद्ध था कि मंद बुद्धि की औरत अंगलोक में देवलो के नाम से ज्यादा जानी जाती है।

धनतेरस : कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को आयोजित होनेवाला लोकप्रिय लोकपर्व, जिसमें सूर्यास्त के बाद घर-द्वार पर जमदीरी (यमदीप) जलाने की प्रथा है। लोकविश्वास प्रचलित है कि इस दिन पितरलोक से पितर अपने वंशधरों को देखने नीचे उतरते हैं। यमदीरी भी उन्हीं पितरों के सम्मान में जलाई जाती है। इस अवसर पर नये वर्तनों को भी खरीदने की प्रथा थी—अब यही प्रथा पहली पंक्ति में आ गई। लोकआस्था पीछे रह गई है।

नचारी : ऐसे मुक्तक जो दीनता आरो याचना के भावों से पूर्ण हो 'नचारी' कहे जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे विनय के मुक्तक आराध्य के गुणों का बखान करते मुक्तक होते हैं। अंगिका के भक्त कवि भवप्रीता नंद ओझा के गीत, 'विमल विभूत्ति बूढ़े बरद वहनमां सें/ लंबे-लंबे लट लटकावै काबा बासुकी, नचारी की कोटि के ही मुक्तक है। वैसे अंगिका में पारंपरिक नचारी की कोई कमी नहीं है, जिनका संकलन कार्य अभी बाकी है।

नटुआ दयाल : नटुआ दयाल अंगप्रदेश में दुलरा दयाल नाम से भी लोकप्रिय है । कथाकार रंजन ने दुलरा दयाल पर जो बहुचर्चित हिन्दी उपन्यास लिखा है, उसका नाम नटुआ दयाल ही है, लेकिन रंजन जी के उपन्यास में प्राप्त अंगिका लोकगाथा की कथा को उसी तरह नहीं रखा गया है, वृहत आकार को देखते हुए उसमें कुछ नया भी जोड़ लिया गया है । अंगिका लोकगाथा के अनुसार नटुआ दयाल भड़ोरा ग्राम के प्रभावशाली व्यक्ति भीम सागर का पुत्र था । रंजन जी ने भड़ोरा को अंगुत्तराप के खगड़िया-बेगुसराय से पाँच कोस की दूरी पर अवस्थित दिखाया है, जो वैज्ञानिक भी है, विश्वसनीय भी । अंगिका

के ही विद्वान कवि सच्चिदानंद श्रीस्नेही ने नटुआ दयाल लोकगाथा का एक संक्षिप्त रूप प्रकाशित है, जो आकाशवाणी भागलपुर से प्रसारित भी है । संक्षिप्त लोकगाथा शेखर प्रकाशन, पटना से प्रकाशित है ।

नन्ही बिन्नी : 'नन्ही-बिन्ही' लोक नाटक सम्पूर्ण रूप से एक सामाजिक नाटक है । यह भी गीत प्रधान ही है, जो यह 'नन्ही-बिन्ही' दो बहनों की कथा पर आधारित है, बिन्ही नाटक की नायिका है । अईचा इस नाटक का नायक है, जो कम उम्र के बावजूद बिन्ही के सामने विवाह का प्रस्ताव रख देता है । बिन्ही प्रश्न करती है कि विवाह के बाद वह मुझे कहाँ रखेगा, कहाँ ले जायेगा, तब अईचा गीत में उसके उन प्रश्नों का उत्तर देता है । बिन्ही इस घटना को भाभी के समक्ष रखती है और फिर अईचा-भाभी का संवाद भी होता है । नाटक का अंत भाभी के करुण विलाप के साथ होता है, जिसके जीवन में सौतन का प्रवेश हो गया है । 'नन्हीं-बिन्ही' का एक अंश प्रस्तुत है,

अईचा : लै जैबौ तोरा एकचारी गे छोटकी !
लै जैबौ तोरा एकचारी ! साहेबगंज सें टिकस कटैबौ
लै जैबौ एकचारी, संग-संग तोरा अइसें डोलैबौ
राधा संग बनवारी गे छोटकी !
लै जैबौ तोरा एकचारी !
छिब्बन दरजी सें अंगिया सिलैबौ, बजजबा सें लहँगा-पटोरी,
सज-धज के जब पनघट जैभैं सम्मन ऐतौ सरकारी गे छोटकी !
लै जैबौ तोरा एकचारी !
चैती दुरगा के दरसन करैबौ गरमों जिलेबी खिलैबौ,
बहियाँ के झुलुआ पर झुलुआ झुलैबौ
आरो चभैबौ केतारी गे छोटकी !
लै जैबौ तोरा एकचारी !

नयका वनजरवा : अंगिका की अति लोकप्रिय लोकगाथा का नायक ही है शोभनायक वनजारा, जो वणिक पुत्र था। डॉ. डोमन साहु समीर ने

मुझे बताया था कि शोभनायक संथाल परगना के गोड्डा जिले का वणिक पुत्र था और उसका विवाह चम्पापुर की बारी नामक एक सुकन्या से हुआ था । गौना के बाद जब बारी अपनी ससुराल आ गई, तब नयका व्यापार के लिए घर से निकल पड़ा । दुर्भाग्य से लोकाचार के कारण वह अपनी पत्नी का एक बार भी मुँह नहीं देख सका और इसके लिए वह अधिक दिनों तक घर पर रुक भी नहीं सकता था ।

वह जानता था कि मोरंग पहुँचने में उसे कई दिन लग जायेंगे, इसीसे वह दिन भर तेज-तेज जंगल-पहाड़ों के बीच से गुजर रहा था, लेकिन रात्रि के समय जंगल में एक सुरक्षित स्थान पर रुक जाता । एक रात वह जिस पीपल वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ था, उसी वृक्ष पर हंस के जोड़े को उसने आपस में बातचीत करते देखा। नयका वनजारा को बाबा वैद्यनाथ की सेवा करने के कारण यह सिद्धि मिली थी कि वह किसी भी चिड़िया के आपसी संवाद को समझ सके । उसने हंसों की बातचीत को एकाग्रता के साथ सुनना शुरू किया, तो उसने जाना—आज की रात जो स्त्री गर्भ धारण करेगी, उसका पुत्र बहुत तेजस्वी होगा । उसने यह बात जानी, तो वह घर लौट आया । रात बीतने में अभी एक पहर बाकी थी । उसने अपनी पत्नी के साथ वह रात बिताई और भोर होने से पहले ही घर से निकल गया—जाते-जाते अपनी अंगुठी भी निशानी के रूप में देता गया । तेरहवां वर्ष बीतने पर जब वह मोरंग से व्यापार कर लौटा, तो उसे मालूम हुआ कि उसके माँ-बाप ने बारी को कुलक्षणा बना कर घर से बाहर कर दिया है, और अब वह अपने देवर—नयका के सहोदर भाई के साथ जीवन काट रही है । नयका वनजारा से अपनी माँ से बीती सारी बातें बताईं और निशानी में अंगुठी देने की बात भी की, जिसे सुनकर माता-पिता को काफी पश्चाताप हुआ और सम्मान के साथ बारी को घर ले आया । इस तरह शोभा नयका और बारी के जीवन में नई उमंग और खुशियों का संचार हो गया। शंकर दयाल सिंह के संपादन में डायमंड पाकेट बुक्स से प्रकाशित 'बिहार : एक सांस्कृतिक वैभव'' में भी इसकी कथा है ।

नहछू : विवाह के कई संस्कारों में एक संस्कार, नहछू जो नखछू का

परिवर्तित रूप है और कि जिस संस्कार में नाईन पैर के अंगुठे के नख को कुछ इस तरह काटती है कि लहरनी की धार चमड़े को छू जाए। अंगुठे से निकले रक्त से वर-वधू अपने अंगुठे सटाते हैं—लोक में इसे अमृत पिलाने के नाम से भी जाना जाता है। वैसे अब इसका चलन नख छुआने तक सीमित रह गया है

नहनौत : बारात के निकलने के पूर्व वर के स्नान के लिए लाया गया पानी, जो मिट्टी के पात्र में रख कर कन्या के घर तक ले जाया जाता है । यह रस्म सभी जातियों में नहीं देखा जाता है ।

नारदी : नारदी श्राद्ध के अवसर पर संपादित होनेवाला लोकनृत्य ही है, जिसमें ऊँची आवाज में भजन-गायन होता है और कि जिसमें मृदंग और झाँझ के संगीत की प्रमुखता होती है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि नारदी में राम, कृष्ण-राधा के प्रसंगों को गायन का विषय नहीं बनाया जाता। वैराग्य के गीतों की प्रमुखता नारदी लोकनृत्य की आत्मा है। लोक में आधुनिकता के प्रवेश के बावजूद आज भी नारदी का अस्तित्व शेष नहीं हुआ है।

निरवाही गीत : वर्षाकाल में खेतों को खेती योग्य बनाने के लिए ग्रामीण स्त्रियां खेत में उगे घास-फूस को उखाड़ती हुई जो गीत गाती हैं, वे ही निरवाही गीत हैं द्य इन गीतों में भी जँतसार की तरह स्त्रियों के मन के कोमल-कठोर संसार को साफ- साफ देखा जा सकता है। अपने मित्र अनिरुद्ध प्रसाद के खेतों में निरवाही करती स्त्रियों के जो गीत मैंने आज से बीस - बाइस वर्ष सुने थे, जो गीत अपनी मधुरता के कारण आज भी स्मृति में गूंजते हैं।

नेमाइन : चेचक होने के नौमे दिन, जो अक्षत, पान, सुपाड़ी आदि से उसकी पूजा होती है, वही लोक में नेमाइन के नाम से ज्ञात है ।

नैना जोगन : बहुरा की तरह ही तंत्र-मंत्र की घोर साधिका, जो कोहवर में प्रवेश कर अपने रूप-जाल में वर फाँस लेती है, इसीसे यह जोगन कोई विपत्ति का कारण न बने, इसकी आँखों में काजल लगाने की भी प्रथा है, जो किसी कोने में इसका होना मान कर लगाया जाता है । कथाकार रंजन का नैना जोगन पर एक अधूरा लिखा उपन्यास भी प्राप्त है ।

नोता : किसी विशिष्टि आयोजन के अवसर पर सगे-संबंधियों द्वारा अपने लोगों के पास रंगे सुपारी या आमंत्रण-पत्र भेजा जाता है, वही नोता है ।

पँचघान : नवान्न पर्व पर होनेवाला एक विशेष पूजाविधान जिसमें खेत में लगी धान की फस्लों की कुछ सालियां तोड़कर लाई जाती हैं; फिर इन्हें ही मिट्टी के बर्त्तन में उबालने के बाद ओखल में पाँच सुहागवती स्त्रियां मिलकर चूड़ा तैयार करती हैं, जिस तैयार किये गए अन्न में ही दूध, गुड़, किसमिस आदि मिश्रित कर पंचामृत तैयार किया जाता है, जिसे ही बारी-बारी से परिवार के लोग पाँच बार अग्नि की परिक्रमा करते हुए पंचामृत समर्पित करते हैं ।

पनचरही : शिक्षित वर्ग से अलग लोक में लड़कीवालों की ओर से लड़के वालो को, और लड़केवालों की ओर से लड़कीवालों को दिया जाने वाला 'छेका' ही पनचरही के नाम से भी जाना जाता है ।

पराती : प्रभाती का देशज रूप पराती रात्रि के अंत और भोर होने का सूचक गीत है। ऐसे गीत गंगा या राम-कृष्ण के गुणगान होते हैं। शहरी प्रभाव के कारण अब गाँवों में भी पराती उस तरह नहीं जागती; जैसे कुछ दशक पूर्व टोले-टोले में रस घोलती थी लेकिन लोगों के कंठ में अब भी पराती जागती है।

पारण : उपवास समाप्त के बाद जो प्रथम आहार ग्रहण किया जाता है, उसे ही अंगिका में पारण भी कहा जाता है ।

पितरपक्ष : आश्विन माह के कृष्ण पक्ष में पंद्रह दिनों तक पितरों को पिंडदान करने का धार्मिक अनुष्ठान!

पिपरा मेला : पाँच दशकों से आयोजित हो रहे अंग प्रदेश का एक अनूठा मेला; जो वासंतिक चैती नवरात्रा की दशमी पूजा को संपन्न होता है। यूं तो इस मेले की चहल-पहल चैती नवरात्रा की पहली पूजा से ही शुरू हो जाती है, लेकिन मुख्य आकर्षण दशमी को ही देखा जा सकता है। दसवीं को ही सुल्तानगंज (भागलपुर) के करहरिया पंचायत के पिपरा गाँव में मंदिर-क्षेत्र में आयोजित होनेवाले इस मेले में आसपास के लगभग एक दर्जन गाँव के ऐसे लोग जुटते हैं, जिन्हें अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह-संबंध को तय करना होता है। ये परिवार मुख्य रूप से कुरमी-कोयरी परिवार के होते हैं। लोगों का विश्वास है कि वासंतिक नवरात्रा पर देवी के समक्ष तय हुये वैवाहिक रिश्ते अटूट और सुखमय होते है। इस मेले में सौ से अधिक वैवाहिक रिश्ते तय होते देखे जा सकते हैं, जबकि विवाह में लेन-देन या दहेज की बात तक नहीं होती।

पुरनदेवी : अंगप्रदेश के पूर्णिया जिले की एक लोकदेवी, जिसका मंदिर इसी जिले के पूर्वोत्तर छोर पर अवस्थित है। यहाँ दशहरा के अवसर पर एक विशाल मेले का भी आयोजन होता है।

प्रेत : मृत्योपरांत मनुष्य की स्थूल देहविहीन आत्मा प्रेत है—जो प्रेत पुनरजन्म या स्वर्ग में स्थानप्राप्रि के लिए भटकता रहता है। प्रेत भय का कारण है, इसी कारण लोक में प्रेतमुक्ति के लिए रात के समय चाँदी के बर्त्तन में कर्पूर जलाने और द्वार पर स्वस्तिक के चिन्ह; दीवाली की रात में बने काजल को आँखों में लगाना; अशोक के पत्तों को पूजने के

टोटके भी लोक के बीच प्रचालित हैं।

फगुआ : अंगप्रदेश में होली से अधिक फगुआ ही अधिक लोकप्रिय नाम है क्योंकि यहाँ फागुन की पूर्णिमा में ही रंगों की बारात निकलती है। पता नहीं क्यों, फागुन के आते-आते अंग प्रदेश के अंग में ऐसा उन्माद क्यों हिलकोरें लेने लगता है ? महीने भर पहले ही फाग की धूम ऐसे थोड़े ही हो सकती है । क्या पता, यह सब कामदेव का ही खेल हो। चौंकिए मत, बात एकदम सच की है । जब शिव समाधि में लीन थे और उनकी समाधि को भंग करने के खयाल से वामदेव ने फूलों के वाण की बारिश कर दी, तो रोमांचित शिव की तीसरी आँख भी खुल गई । कामदेव जलकर अनंग हो गया, जिसका एक नाम कन्दर्प भी है। शिव के क्रोध से जहाँ कन्दर्प के अंग का दहन हुआ, वह क्षेत्र अंगदेश कहलाया—यही हमारा धर्मग्रंथ कहता है ।

फिर तो धरती पर हाहाकार मच गया । कामदेव की प्रिया रति ही नहीं रोई, प्रकृति का मुख ही मलीन हो उठा । सदाशिव करूणा से पिघल उठे और कामदेव फिर जी उठा—लेकिन देहधारी हो कर नहीं, देहविहीन होकर । इस रूप में अरूप कामदेव सब के दिलों में जाकर समा सकता था, समा गया । कन्दर्प दहन की घटना तो अंगवासियों के मन-प्राण में समायी हुई है ।

क्या पता, इस घटना के बाद जब भी प्रकृति में रोमांस के कारण फूलों की जागृति के दिन आये होंगे, तब अंगवासियों को कामदेव की स्मृति भी आई होगी और उस सम्पूर्ण प्रसंग को जीवन्त कर देने के लिए यहाँ के लोगों ने पुष्प रंग को निचोड़ कर लोगों की देह पर उछाल दिया होगा और उधर प्राणों में समाया कामदेव ने फिर पंचवाणों को साधा होगा, जिससे उन्मादित होकर लोगों ने उन्माद के गीत गाये होंगे और इस तरह शुरू हो गई होगी—होली ।

यह भी हो सकता है कि इसी दिन रति के विलाप से द्रवित होकर शिव ने कन्दर्प को देहविहीन जीने का वरदान दिया हो और इसी खुशी में अंगवासियों ने फूलों के रंग से एक दूसरे को लाल किया हो।

फिर जब-जब साल का वह दिन आया, लोगों ने रंग और गुलाल से एक-दूसरे का प्रेमभरा स्वागत किया—प्रकृति पुरुष की तरफ और भी खिंची और पुरुष प्रकृति की ओर और भी । स्मृति में एक दिन का यही मदनोत्सव कालान्तर में होली का आकार लेकर खड़ा हो गया हो, तो क्या आश्चर्य ।

फरकिया : आधुनिक खगड़िया का मुगलकालीन नाम फरकिया है। इस नाम के पीछे यही ऐतिहासिक कथा कि जलीय क्षेत्र होने के कारण मुगल शासक अकबर के समय में जब टोडरमल के द्वारा इस क्षेत्र के नाँपी नहीं हो सकी, तो लोगों ने यह कहना शुरू किया कि उसे नाँपी से फरक (अलग) कर दिया है। कालांतर में यही कथन उस क्षेत्र का नाम फरकिया हो गया; जैसे इन्द्रागार->इन्दारा और फिर इनारा हो गया है।

फैकड़ा : फैकड़े अनमिल्ले ही हैं, और सार्थक कविताओं के घेरे में नहीं रखे जा सकते । अंगिका के ऐसे फैकड़े इस महाजनपद में बच्चों के खेलगीत हैं और ये फैकड़े विशेष-विशेष खेल के साथ गाये जाते हैं, जो समूह के गीत हैं और अकेले के भी । 'अंगिका लोकोक्ति, फैकड़ा आरो बुझौव्वल' पुस्तक में संपादक विद्यावाचस्पति चन्द्रप्रकाश 'जगप्रिय' ने ऐसे उन्नीसो फैकड़ों का संकलन-सम्पादन किया । लेकिन इस भाषा में प्रचलित फेकड़ों की संख्या इतनी ही नहीं है और न ये अंगिका फेकड़े मात्र तुक्तक या अर्नगल बाल कविताएं हैं, बल्कि इनमें जीवन के विविध वे विविध ज्ञान भी अभिव्यक्त हैं, जो इन फैकड़ों को अचोके ही वयस्क बनाते हैं । मेरी माँ ने कभी एक फैकड़े का अर्थ बताया था, उसे सुनकर फेकड़े के संबंध में मेरी धारणा ही बदल गई है कि जिन्हें हम अनमेल अर्थों की कविता समझते रहे हैं, उनमें से कई एकार्थक, तिर्यक, और प्रतीक की कविताएं हैं, जिनके बारे में हमें ज्ञान नहीं । माँ ने जिस फैकड़े का अर्थ बताया था, वह है,

औका-बौका तीन तड़ौका
लौआ, लाठी, चन्दन काठी

बाग रे बगडोल डोल, पनिया चुभुक ।

औका-बौका, अंगुलियों की उस स्थिति को कहते हैं, जब वे पाँचो धरती से सटी हों ओर हथेली ऊपर की ओर उठी हो । बच्चा जब चलना सीखता है, तब उसकी लगभग यही स्थिति होती है—यही है औका-बौका । तीन तड़ौका का अर्थ है—जीवन के तीन पड़ाव—बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था । इसके बाद मृत्यु है—अन्त्येष्ठि क्रिया के लिए नाई, लकड़ी, पंचकाठ की काठियों की जरूरत होती है और फिर जली हुई अवशिष्ट लाश जल में डाल दी जाती हैं । पनिया चुभुक—पानी में फेकने की आवाज है ।

अब देखें, अनर्गल लगने वाली कविता किस तरह यहाँ सार्थक हो उठी है ।

यहाँ तक कि अंगिका के कई फैकड़े तंत्र के मंत्रों से भी संबंध रखती कविताएं लगती हैं । इस पर स्वतंत्र रूप से विचार करने की आवश्यकता है । इसका उल्लेख हो चुका है कि महाअंगजनपद तंत्र का सिद्ध क्षेत्र रहा है । मारन-उच्चाटन और चिकित्सा से जुड़े हजारों मंत्र अब भी इस प्रदेश में, जो सावर मंत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं, प्रचलित हैं । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हजार-डेढ़ हजार वर्ष की यात्रा में वे मंत्र बिगड़े रूप में फैकड़े बन गये हैं, जो अब बच्चों को खेलने और खेलाने के काम आ रहे हैं । नीचे कुछ अंगिका फेकड़ा दिये जा रहा हैं, जो वास्तव में सावर मंत्र ही है,

१. टुटलोॅ खाट पुरानोॅ बान / चढ़ रे बिच्छू सिर केॅ तान ।
२. अंग बान्होॅ बान बान्हों /औघढ़ बाबा डाँढ़ा बान्हों
भैरव बाबा गर्दन बान्हों / जेलिया मसान कपार बान्हों
चल जोगनी छू मन्तर / छू कमच्छा माई ।
३. इल्ल बान्हों, बिल्ल बान्हों / बान्हों लोहा वाला साँय
पढ़ौ पीरौं सरसों / निकालोॅ करिया नाग ।

मुझे स्मरण है कि इसे हम बच्चे खेल-खेल में गाया करते थे । कुछ साल पूर्व अंगिका के सावर मंत्रों को जानने के क्रम में मुझे यह ज्ञात हुआ कि यह तो वह मंत्र है, जो बिच्छू के विष को बढ़ाने के लिए तांत्रिक लोग पढ़ते हैं । अंगिका भाषा के इन सावर मंत्रों, जो वृहत्तर

अंग जनपद में फैले हुए हैं, का संकलन होना अभी बाकी ही है ।

बटगमनी : बटगमनी लोकगीत का एक भेद है जो लय की अनगढ़ता में भी प्राप्त हो सकता है। दरअस्ल लम्बी यात्रा के क्रम में राह की थकान मिटाने के लिए जब राहगीर ऊँचे या मध्यम खर में गीत गाते हैं, तो उसे ही लोक में बटगमनी कहा जाता है । स्त्रियां भी वटगमनी गाती हैं । मैंने कभी लोकगीत गायिका अर्पिता चौधरी को वटगामनी गाते हुए सुना था ।

बरहम बाबा : बरगद और पीपल वृक्ष का संयुक्त रूप ही लोक में ब्रह्म रूप है और 'ब्रह्म' का लोकशब्द बरहम है । वनों और वृक्षों के लगातार कटने के कारण लिपटे बरगद और पीपल तो दुर्लभ ही हो गये हैं और इसी कारण ब्रह्म बाबा से जुड़े गीत भी अब अंगप्रदेश में कम ही सुनने मिलते हें । एक समय था कि बरहम बाबा के गीत गाँवों में महिलाओं के कंठों में गूंजते ही रहते थे । मैंने अपने गाँव में ही नदी के किनारे संयुक्त रूप से खड़े बरगद और पीपल के वृक्ष को देखा था, यह साढ़े छः दशक पूर्व की बात है, जो संयुक्त वृक्ष लाल, पीले धागों से बंधे रहते । चन्द्रप्रकाश जगप्रिय (खगड़िया) ने मुझे बताया कि जुटे-जुटे पीपल वट के नीचे उल्टी हाँडी के आकार का बना एक माँटी का पिंड ही बरहम बाबा कहाते हैं ।

बहुरा : बहुरा—गोड़ी जाति की लोकदेवी है, जिसे तंत्र-मंत्र की सिद्धि प्राप्त थी । लोकप्रसिद्ध कथा है कि इसी तंत्र के बल पर उसने गाँव के कई सौ दामादों को अपना शिकार बना लिया था । बहुरा की इकलौती बेटी अमरोतिया की शादी जब भड़ोरा निवासी गर्वी दयाल से पक्की हुई और बारात बहुरा के दरवाजे पर पहुँची, तो बहुरा ने होनेवाले दामाद को अपना शिकार बनाना चाहा । गर्वी दयाल किसी तरह अपनी जान बचा कर भाग निकला और मंत्र-सिद्धि के लिए आसाम जा पहुँचा। वहाँ सिद्ध योगिनियों से मंत्र की दीक्षा ली और सिद्धि प्राप्त कर

जब वह लौटना चाह रहा था, तो योगिनियों ने उसे अपने वश में करने के लिए मंत्र का प्रयोग किया लीकिन गर्वी विभिन्न पक्षी और जानवर का रूप धारण कर अन्तोगत्वा योगिनियों की तंत्र-सीमा से बाहर निकलने में समर्थ हो गया । वहाँ से मुक्त होते ही वह बखरी पहुँचा, जहाँ एक कुएं पर उसकी मुलाकात अमरोतिया और उसकी भाभी से होती है ।

गर्वी प्यासा होने की बात करता है । जब अमरोतिया कुएं में बालटी डालती है, तो कुएं का पानी पाताल की ओर खिसकने लगता है । फिर तो बातों-ही-बातों में सारी बातें खुलने लगती हैं । बहुरा को भी इस रहस्य का पता चलता है । पता चलते ही वह गर्वी पर मंत्र-तंत्र का प्रयोग शुरु कर देती है, लेकिन इस बार गर्वी दयाल डरता नहीं, बल्कि मंत्र-तंत्र से सिद्ध अपनी सास बहुरा को परास्त कर देता है । विवश बहुरा अमरोतिया का ब्याह गर्वी दयाल से कर देती है, जिसे वह पत्नी रूप में स्वीकार कर भड़ौरा लौट आता है । बहुरा और गर्वी दयाल की यह कथा लोकगाथा में बद्ध है, जिस गाथा को अंगप्रदेश में नटुआ दयाल, बहुरा गोढ़िन और कमला मैया के नाम से लोग जानते हैं । अंगिका के कवि सच्चिदानंद श्रीस्नेही ने इस गाथा को कमला मैया के ही नाम से संकलित किया है । कथाकार रंजन ने हिन्दी में इस लोकगाथा पर जिस वृहत उपन्यास का रूप गढ़ा है, उसका नाम 'नटुआ दयाल' है । गाँवों में इस लोकगाथा को गायन के साथ नाट्य रूप में प्रस्तुत करने का प्रचलन रहा है । कुछ विद्वान श्रीस्नेही द्वारा संकलित लोकगाथा को पूर्ण नहीं मानते । उनका कहना है कि यह कमला मैया का संक्षिप्त रूप है ।

बाँसुरी देवी : अंगप्रदेश के कुछ अंचलों में बाँसुरी देवी के पिंड होने की जानकारी मुझे मिली थी। पंजवारा के कचमचिया ग्राम में भी पिंड के रूप में बाँसुरी देवी थी लेकिन एक दशक पूर्व मुझे वह पिंड नहीं दिखा। बाँसुरी देवी के पुजारी बरई जाति के ही लोग होते हैं—इससे यह समझा जा सकता है कि यह बरई जाति की कुलदेवी है। इतिहासकर डॉ.

विनय प्रसाद गुप्त ने कहलगाँव में भी बाँसुरी देवी के पिंड मिलने का उल्लेख अपनी पुस्तक 'कहलगाँव का इतिहास' में किया है।

बाघेसरी देवी : बाघेसरी देवी कभी अंगुत्तराप की लोकदेवी होगी, जिसके संबंध में लोगों का ज्ञान अब सिमट गया है । भागलपुर आकाशवाणी से प्रसारित प्रदीप प्रभात की वार्ता (२०१० ई) 'लोकगाथाओं में लोकदेवियाँ' में भी इसका उल्लेख नहीं हुआ था । निरंतर संवाद के क्रम में मुझे अंगिका साहित्यकार डॉ. देशभक्त ने बताया था कि बघेसरी देवी तांत्रिक स्त्री थी, जिसने मोरंग में तंत्र की सिद्धि प्राप्त की थी । एक बार अपनी ननद की जिद पर उसे तंत्र के चमत्कार को दिखाना पड़ा । इसके पूर्व उस स्त्री ने अपनी ननद को एक मुट्ठी राख थमाई और कहा कि जब वह वस्त्रहीन हो जाये, और रूप बदल लेगी, तब वह उसके ऊपर यह राख छिड़क दे ताकि वह पूर्व रूप में आ सके। इतना कह वह निर्वस्त्र हो गई और बाघिन रूप में आ गयी । भाभी के उस बदले रूप को देखकर ननद एकदम भयभीत हो गई, और वह राख तथा उसके वस्त्र, जो उसे थमाये गये थे, लेकर गाँव की ओर भाग खड़ी हुई और गाँव पहुँचकर इस घटना को भी छिपा गयी । इधर बाघिन रूप में वह स्त्री भटकती हुई मोरंग के जंगल में पहुँच गयी । वह उस अवस्था में ससुराल लौट भी नहीं सकती थी, इसीसे उसने प्राण त्यागने की बात सोची और कई दिनों तक भूखे-प्यासे रहने के बाद उसने उस बाघिन रूप को त्याग दिया, लेकिन इसके पूर्व उसने अपने ससुरालवालों को उसके साथ बीती सारी घटनाओं को सुनाया और कहा कि अब इसी रूप में अपने ससुरालवालों तथा उस गाँव की रक्षा करती रहेगी । जब गाँववालों को इस बात की जानकारी हुई, तो उन लोगों ने सम्मिलित रूप से कुलवधू की लोकदेवी रूप में पूजा की, जो बाद में बाघेसरी देवी नाम से लोकप्रिय हुई । स्मरण रहे कि मेरे एक खिरहरी मित्र ने मुझे बताया था कि आषाढ़ माह में गहवर बना कर उनके परिवारवाले बाघेसरी देवी की पूजा करते हैं ।

बाबा धर्मदास : बाबा धर्मदास नाई जाति के लोकदेव हैं। इनके

संबंध में मिली जानकारी के अनुसार बाबा धर्मदास का जन्म अंगप्रदेश के मुंगेर जिले के नौआगढ़ी नामक स्थल में सावन शुक्ल एकादसी को हुआ था, जो काली के अनन्य भक्त थे। यूं तो धर्म में ही इनका मन लगा रहता था, लेकिन शास्त्र के साथ ये शस्त्रसाधना में भी दक्ष थे, इसीसे इन्हें वेणी धर्मदास भी नाई-समाज में कहने की प्रथा है । इनकी विशिष्ट पहचान इसलिए भी है कि ये हिन्दु समाज में व्याप्त वर्णभेद के विरोधी रहे । नारी-समाज के प्रति उनके सम्मान की चर्चा आज भी समाज में प्रचलित है। एक कथा यह भी प्रचलित है कि जब बौद्धों के प्रति दुर्भावना का भाव उग्र होने लगा था, तब उन्होंने इस भाव के विरोध में अपनी जन्मभूमि नौवागढ़ी में भयभीत बौद्धों को शरण दी थी। प्राप्त कथा के अनुसार इन्होंनें अपनी इच्छा से मृत्यु को ग्रहण किया था । शुक्ल एकादशी को, विशेष रूप से नाई-समाज के बीच गाये जानेवाले अंगिका लोकगीतों में इनके प्रताप की प्रशंसा देखी जा सकती है ।

बारहमासा : बारहमासा वर्ष के बारहो महीने का प्राकृतिक और सांस्कृतिक चित्रण है । अंगिका में निम्नांकित बारहमासा तो इतना लोकप्रिय है कि आसपास के बहुत बड़े क्षेत्र में यह अपने हल्के रूप-परिवर्तन के साथ व्याप्त है ।

प्रथम मास अषाढ़ हे सखि साजि चलल जलधार हे ।
एहि प्रति कारन सेतु बान्हल सिया उदेश श्रीराम हे ।।
सावन हे सखि शब्द सुहावन रिमझिम बरसत बून्द हे ।
सबके बलमुआ रामा घरे-घरे ऐलै हमरो ँ बलम परदेश हे ।।
भादो हे सखि रैनि भयावन दूजे अन्हरिया राति हे ।
ठनका जे ठनकै रामा बिजुली जे चमकै से देखि जियरा डराय हे ।।
आसिन हे सखि आस लगाओल आसो ने पुरलै हमार हे ।
आसा जे पूरलै रामा कुवरी सौतिनिया के कत राखल लोभाय हे ।।
कातिक हे सखि पुण्य महीना सखि सब करै गंगा असनान हे ।
सब सखी पहिरै पाट पटम्बर हम धनि गुदरी पुरान हे ।।

अगहन हे सखि हरित सोहावन चहु दिश उपजल धान हे ।
सामा चकेबा रामा खेल करै सखि से देखि जिया हुलसाय हे ।।
पूस हे सखि ओस पड़ि गेल भीजि गेल नामी-नामी केश हे ।
जाड़ छेदै तन सुइ सन छन-छन, थर-थर काँपै करेज हे ।।
माघ हे सखि जाड़ा लगतु है देह थर-थर काँपै हे ।
पिया जे होतिया रामा कोरवा लगैतियौं कटतै जाड़ हमार हे ।।
फागुन हे सखि रंग महीना सब सखि खेलै पिया संग हे ।
से देखि हमरोॅ जियरा तरसै ककरा पर दियै हम रंग हे ।।
चैत हे सखि सब वन फूलै फूलवा जे फूलै गुलाब हे ।
सखि सब फूलै रामा पियाजी के संग में हमरोॅ फूल मलीन हे ।।
बैसाख हे सखि पिया नहि ऐलै विरह लहकत गात हे ।
दिन जे कटै रामा कानतें-कानतें लहकतै बीतै सारी राति हे ।।
जेठ हे सखि ऐलै बलमजी पूरल मन केरोॅ आस हे ।
बाकी हे दिन सखि मंगल गाबथि रैन बितावथि पिया साथ हे ।।

बारी : एक विशेष का कलश जो बिहुला पूजा के प्रथम दिन स्थापित किया जाता है। यह कलश पंचमुखी नाग से सज्जित होता है।

बिटलाहा : बिटलाहा संथाल जनजाति के बीच प्रचलित सामाजिक बहिष्कार का दंड-विधान है। जब कोई संताल युवक गोत्र से बाहर किसी युवती से शारीरिक संबंध करता है, तो गाँव का माँझी कम-से-कम पाँच गाँवों के माँझियों के साथ विचार-विमर्श करता है। दोष सिद्ध हो जाने पर गाँव का जोगमाँझी सखुए की एक डाली तोड़ ले आता है, और उसमें लगी पत्तियों की संख्या के आधार पर उतने दिनों के बाद दोषी को समाज से किसी तरह का संबंध रखने से वंचित कर दिया जाता यहाँ तक कि सार्वजनिक कुएं के पानी का उपयोग भी दोषी नहीं कर सकता उसे गाँव से बाहर रहना पड़ता है। वैसे घरवापिसी की भी व्यवस्था है, जिसमें दोषी को गर्दन में कपड़ा डाले, हाथों में जलपात्र लिए माँझी के सामने नतमस्तक होना पड़ता है और फिर माँझी की

अनुमति पर एक सहभोज के बाद वह समाज का व्यक्ति हो जाता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व संथाली समाज मे बिटलाहा की प्रथा थी लेकिन अब इसका नाम भर शेष रह गया है।

बिहुला : बिहुला—अंगप्रदेश की लोकदेवी है। प्राप्त लोकगाथा के अनुसार इसका जन्म नौगछिया के उजानी गाँव में हुआ था । इसकी माता का नाम मोनिका और पिता का नाम बासु था, जो सौदागर था । बिहुला चम्पा के प्रसिद्ध सौदागर चाँदो की पुत्रवधू थी । लोकगाथा के अनुसार भगवान शिव की मानस पुत्रियाँ विषहरी अपने पिता की तरह धरती पर पूजित होना चाहती हैं और शिव के ही इस कथन पर कि अगर उन्हें चाँदो सौदागर अपनी पूजा दे दे, तो वह काम असंभव नहीं । यह सुनकर मानस पुत्रियां चम्पा पहुँचकर चाँदो को अपने मन की बात कहती हैं, लेकिन पूजा की जगह उन्हें सौदागर से अपमानित ही होना पड़ता है ।

मानस पुत्रियां विषहरी अपने अपमान को भूल नहीं पाती हैं और जब सौदागर के छवो पुत्र व्यापार के लिए सभी दिशाओं में अपनी नौकाओं के साथ निकल पड़ते हैं, साथ में चांदो सौदागर भी, तो पाँच कोस के बाद ही गंगा में भीषण लहरें, आँधी-तूफान के कारण, उठने लगती हैं ।

चाँदो सौदागर की पत्नी सोनिका साहुनी स्वप्न में सब कुछ देखती है और सामने मनसा को भी, जो उससे कह रही है कि अगर वह अपने पति से पूजा दिलाए, तो उसका पति बच सकता है । सौनिका के हाँ कहने पर चाँदो सौदागर किसी तरह विपत्ति से बाहर तो निकल आता है, लेकिन चम्पा लौटने पर वह मनसा देवियों को पूजा देने से इनकार कर देता है । उसकी जिद है कि जिस हाथ से वह शिव की उपासना करता है, उसी हाथ से बेंगखानेवाली विषहरी की पूजा नहीं कर सकता । इस कारण उसे अपने छवो पुत्रों के डूब जाने का भी दुख नहीं ।

समय बीतता है और चाँदो को पुनः एक पुत्र की प्राप्ति होती है,

उसका नाम रखा जाता है लखेन्द्र । लखेन्द्र जब बारह वर्ष का होता है, तब उसकी शादी की चिंता चाँदो को होती है । चिंता इस बात के लिए भी थी कि एक भविष्यवाणी के अनुसार लखेन्द्र की मृत्यु विवाह की रात ही हो जायेगी लेकिन उसे पुनर्जीवन मिल सकता है—अगर उसका विवाह उस कन्या से हो, जो लोहे की दाल को गला सके ।

चाँदो सौदागर अपने पास लोहे से निर्मित, पाँच की संख्या में, कलाई दाल लेकर ऐसी कन्या की खोज में निकल पड़ता है कि उजानी में एक विशाल पोखर को नजदीक एक अति सुन्दर कन्या दिखाई देती है । पूछने पर अपना नाम बिहुला बताती है । चाँदो उससे उसके पिता का नाम पूछ कर बिहुला का घर पहुँचता है । शादी की बात होती है और चाँदो लोहे की दाल को गलानेवाली शर्त रखता है । बिहुला अपने तप-बल से ऐसा करने में समर्थ हो जाती है ।

चंपा में शादी की तैयारियां शुरू होती हैं । चाँदो सौदागर विश्वकर्मा को आदेश देता है कि वह लोहे का ऐसा घर बनाए, जिसमें सूत भर भी छेद नहीं रहे, लेकिन विश्वकर्मा विषहरी के भय से उस लौहघर में सूत भर का छेद छोड़ देता है, जिसमें धुआँ करने के समय सुइया साँप बैठ जाता है और छेद का पता नहीं चलता ।

फिर ब्याह की रात ही जोरों की आँधी उठती है, सब कुछ अस्तव्यस्त होने की दशा में नाग उस छेद से लौहगृह में प्रवेश कर लखेन्द्र को डँस लेता है और इस तरह उसकी मूर्च्छा बढ़ने लगती है । चिकित्सा के लिए धनुआ दौड़ते हुए धनवन्तरी के पास पहुँचता है। वैद्य धनवंतरी बताते हैं कि चंपा की गंगा के दक्षिण में एक जंगल है, उसमें ही चमरी गाय रहती है । अगर उसकी पूँछ काट कर लखेन्द्र पर हवा की जाए, तो वह जी उठेगा । धनुआ जंगल पहुँच कर ऐसा ही करता है, और जब कटी पूँछ को लेकर चम्पा लौटने लगता है, तो साधु-भेष में विषहरी उससे कहती है कि लखेन्द्र तो मर चुका है, धनुआ अब श्मशान ही पहुँचे, तो अच्छा। श्मशान पहुँचने पर उसे छल का पता चलता है, लेकिन तब तक लखेन्द्र की मृत्यु हो चुकी है । चाँदो शव की अन्त्येष्टि क्रिया की बात करता है, लेकिन बिहुला लखेन्द्र के शव को एक मंजूषा में रखवाती है और गंगा पर पूरब-दिशा की ओर चल

पड़ती है । उसकी मंजूषा गोकुला घाट, सेमापुर घाट, जुआरी घाट होते हुए गलंत्री घाट तक पहुँचती है—जहाँ लखेन्द्र की हड्डियों को सुरक्षित नेतुला धोबिन के घर पहुँच जाती है ।

नेतुला देवताओं के वस्त्र को धोती है, बिहुला जब वस्त्रों की सफाई करती है, तो कपड़े की चमक देखकर देवता भी दंग होते हैं । देवताओं की बुलाहट पर बिहुला मैना नगर पहुँचती है, जहाँ वह देवताओं की सभा में नृत्य करती है, देवता प्रसन्न होते हैं, तो वह अपने छवो जेठ और पति के पुनर्जीवन की मांग करती है, पर विषहरी उपस्थित होकर कहती है कि पुनर्जीवन के लिए उसे मृत जेठ और पति की हड्डियों को लाना होगा, और चाँदो से उसे पूजा दिलानी होगी । लेकिन उनकी हड्डियों तो गलंत्री घाट में टुण्डी राक्षसी के द्वारा इधर-उधर कर दी गई थीं । बिहुला गलंत्री घाट के जंगल में पहुँचकर टुण्डी को बिहुला की मौसी होने की बात कहती है और उसकी बातों पर वह राक्षसी विश्वास भी कर लेती है । एक बार जब वह राक्षसी बिहुला के भोजन की व्यवस्था के लिए जंगल की ओर जाती है, तो बिहुला अपने जेठ और पति की हड्डियों को लेकर वहाँ से निकल जाती है और इस तरह अपने जेठ और पति को जीवित रूप में पाकर पुनः चंपा की ओर निकल पड़ती है । रास्ते में अपने जेठ की शंका के कारण खौलते घी की कड़ाही में प्रवेश के साथ, गंगा में भी कूदकर उसे अपनी सतीत्व की परीक्षा देनी होती है । चम्पा पहुँचने के पूर्व ही वह डोमों की बस्ती में रुकती है और वहीं से सुपती-मौनी लेकर चम्पा पहुँचती है । यह संयोग ही था कि उसी दिन लखेन्द्र की वार्षिकी का क्रिया-कर्म भी होना था । सुपती-मौनी बेचने के क्रम में उसे उसकी गोतनियां पहचान लेती हैं और वे सोनिका-चाँदो के साथ उसी घाट पर पहुँचती हैं । चाँदो का आग्रह होता है कि वे चम्पा लौट चले, बिहुला विषहरी को पूजा देने की शर्त्त रखती है—जिसे चाँदो के स्वीकार किए जाने पर छवो भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ तो लौट जाते हैं, लेकिन बिहुला अपने अपमान को याद कर चम्पा लौटने की जगह अपनी नाव से मैना नगर लखेन्द्र के साथ लौट जाती है ।

बोलबै : डॉ. चौधरी और श्री चकोर ने बोलबै लोकनृत्य के संबंध में लिखा है कि अंग प्रदेश में बोलबै लोकनृत्य अपनी लोकरुचि की काव्यात्मक उक्तियों को लेकर काफी लोकप्रिय है। यह भी ज्ञात होता है कि नायक उन काव्य पंक्तियों को गा-गा नृत्य करते थे। दुर्भाग्य यह है कि हाल के दिनों में यह लोकनृत्य भी लोक में दिखाई देने की बात तो दूर, अब लोगों को इस नृत्य के बारे में जानकारी तक नहीं है।

भगैत : अंगिका लोकनाट्य का एक लोकप्रिय भेद है, भगैत। इस लोकनाट्य पर विस्तार से विचार करते हुए डॉ. जनार्दन प्रसाद यादव ने लिखा है कि भगैत अंगप्रदेश का लोकप्रिय लोकनाटक है, जो पूजा-पाठ में लोकगीतगायन पर आधारित होता है। वैसे भगैत मंच पर भी प्रदर्शित होता है—तब इसका रूप किंचित बदला हुआ होता है लेकिन पूजापाठ के अवसर पर होनेवाला भगैत किसी पवित्र स्थल पर आयोजक आयोजित करता है। जैसाकि भगैत में कोई लोकदेवता किसी पुरुष में उतरता है, तो जिसपर उतरता है, वह भगता कहाता है और मंडली के आगे-आगे गानेवाला गायक पंजियार कहाता है जो कानों में अंगुली डालकर कभी-कभी ऊँचे स्वर में गाता है और उसका अनुसरण करने वाली मंडली के लोग भगैतिया कहाते हैं। यह लाकनाट्य भी मूल रूप से गीत संगीत पर ही आधारित होता है और संगीत में ढोल-मंजीरे के अतिरिक्त खंजड़ी-मृदंग भी शामिल किये जाते हैं। भगता में जब लोकदेवता का आगमन होता है, तो आगिन से जी सटा लेना, छड़ी से भक्त को छूना, रोने लगना जैसी क्रियाओं से जुड़ जाना आम बात होती है—तब भक्त भी यह पूरी तरह से मान लेते हैं कि उनके अभीष्ट देवता भगता पर आसीन हैं । अत्यधिक आधुनिकता के बावजूद अंगप्रदेश में भगैत का प्रभाव किसी तरह भी कम नहीं हुआ हैं!

भदरिया : भदरिया बाँका जिला का प्राचीन नगर, जो बुद्धकाल में भद्दई या भद्र नगर नाम से विख्यात था। इसी नगर की थी महात्मा बुद्ध

की पहली शिष्या, विशाखा। अभी हाल में ही इसके करीब से बहनेवाली पौराणिक नदी चानन के पेट में एक समृद्ध नगर होने का पता चला है, जो पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया जा रहा है। इस प्राचीन नगर की स्थापना संभवतः बुद्धकाल से भी पूर्व महाभारत काल में ही होने की जानकारी इतिहासकार दे रहे हैं।

भद्दरी : भद्दरी घाघ और डाक कवि के ही समकालीन रहे होंगे, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। यह बात तो इससे भी सिद्ध होती है कि घाघ के ऐसे भी मुक्तक मिल जाते हैं, जिनमें घाघ भद्दरी को कुछ कहते मिलते हैं। इससे तो यही लगता है कि ये दोनों कवि समकालीन ही नहीं, वे एक ही स्थान के होंगे, लेकिन भद्दरी को घोघा का नहीं मानकर बाँका जिले के भदरिया गाँव का ही मानना तर्कसंगत लगता है। इतिहासकार राजेन्द्र प्रसाद सिंह के अनुसार—इतिहास अपने को दुहराता रहता है, इसी से घाघ के स्थान पर आज कृषि विश्वविद्यालय है और कर्णगढ़ पर सैन्य प्रशिक्षण केन्द्र है । हमें स्मरण रखना चाहिए कि बाँका का भदरिया अंचल कतरनी चावल के लिए प्रसिद्ध रहा है, जिससे बना खीर महात्मा बुद्ध के लिए भी परोसा गया था। तो, कृषि के लिए प्रसिद्ध उस अंचल में अगर भद्दरी जैसे लोककवि का जन्म हुआ हो, तो आश्चर्य नहीं। भद्दरी कवि का नाम कह-कहीं भड्डरी रूप में भी प्राप्त होता है। जहाँ तक काव्य शैली का प्रश्न है—वह घाघ और डाक से ही मिलती जुलती काव्य शैली है ।

भरदुतिया : भरदुतिया अन्य जनपदों-महाजनपदों की तरह अंग प्रदेश का प्रमुख लोकपर्व है, जो कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया को सम्पन्न होता है। सामा-चकेवा और राखी की तरह यह भी भाई-बहन का ही लोकपर्व है । इस अवसर पर भाई सौगात लेकर बहन के घर पर पहुंचता है और बहनें तिलक लगाकर भाई की लम्बी उम्र का याचना करती है। इस लोकपर्व के पीछे भी एक लोककथा प्रचलित है ।
कथा है कि इसी दिन यमराज अपनी बहन यमुना नदी से तिलक लेने

आते हैं और कोई बहन जब अपने भाई का तिलक करती है, तो भाई दीर्घजीवी होता है ।

भाजा : भाजा, अंगुत्तराप में प्रचलित एक लोकपर्व है जिसके पीछे एक लोककथा भी प्रचलित है। कथा के अनुसार एक राजा और संतानरहित एक साधु में गहरी मित्रता थी लेकिन राजपुरोहित की इस शिकायत पर कि सुबह-सुबह संतानहीन व्यक्ति का मुँह देखना ठीक नहीं; जिसके कारण साधु अपनी पत्नी के साथ किसी अन्य जनपद में निवास करने लगता है । एक दिन उसकी पत्नी कई स्त्रियों को किसी की पूजा करते देखती है। पूछने पर पता चलता है कि वे भाजा की पूजा कर रही हैं, निःसंतानों को संतान देती है। यह जानकर साधू की पत्नी भी भाजा पूजा करती है और जिसके कारण उसे भी एक पुत्र की प्राप्ति होती है। पुत्र की प्राप्ति होते ही साधु अपनी संतान और पत्नी सहित अपने मित्र राजा के पास पहुँच जाता है। बाद में साधू के पुत्र का विवाह राजा की बेटी से संपन्न होता है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद-पटना से प्रकाशित लोकगाथा परिचय में सा-साफ लिखा है कि यह लोकगाथा अंगिकांचल पूर्णिया से प्राप्त हुई है । पूर्णिया में यह भाजा पर्व भादो माह में संतान-कामना से संपन्न होता है।

मंजूषा कला : बिहुला लोकगाथा में वर्णित विविध प्रसंगों की भित्ति-चित्रकला मंजूषा कला है । इस कला में बिहुला, चाँदो सौदागर और सोनिका साहुनी के साथ विषहरी बहनों के रूपों की प्रमुखता होती है। ये बहनें मनसा देवी के नाम से अंगप्रदेश में विख्यात हैं और जिनके नाम—मैना, जया, पद्मा, विषहरी और दुतिला भवानी हैं । इनकी पहचान के लिए चित्र में मैना, तीर-धनुष, कमलपुष्प, अमृत-कलश और मणि-प्रकाश अंकित होतें हैं। प्रत्येक देवी के एक हाथ में नाग का होना तो दिखाया ही जाता है । चित्र के सीमान्तर भाग नाग और आम या अशोक पल्लव से अलंकृत होते हैं। कहीं-कहीं इन चित्रों में फूले हुए कदम्ब फूलों को दर्शाने की भी कला मिलती है, और भी कुछ

विविधताएं मिल जा सकती हैं लेकिन ये चित्र मुख्य रूप से लाल, हरा, पीले रंगों से ही चित्रित होते हैं । चित्र में स्त्री-पुरुष के काया-अंकन के लिए डमरू के आकार की देह के चारो कोनों पर हाथ-पैर दर्शाने के लिए छोटी-छोटी लकीरें खींची जाती हैं, फिर स्त्री-पुरुष की भिन्नता के लिए पुरुष की चोटी और स्त्री के बंधे हुए केश के अतिरिक्त जहाँ पुरुष के वस्त्र में कमर से पैर तक सटी हुई धोती को दर्शाया जाता है, वहाँ स्त्री की अंगिया पर दो लघु गोलाई के निर्माण से स्त्री होने का बोध कराया जाता है । आँखें या तो एक चश्मी होती हैं, या फिर दो चश्मी लेकिन किसी ही हाल में ये आँखें बड़ी-बड़ी और पात्र के कानों तक फैली हुई ही दर्शायी जाती हैं ।

ढाई-तीन दशक पूर्व इस कला के क्षेत्र में चक्रवर्ती देवी का नाम ही प्रमुखता से लिया जाता था। आज रामलखन सिंह, उलूपी झा, मनोज पंडित, विशुद्धानंद मिश्र, अनुकृति, सुनील कुमार, कुमार संभव, ने इस दिशा में एक नया इतिहास रचा है । शेखर, ज्योतिषचंद्र शर्मा ने मंजूषा कला पर महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं । अभी हाल में ही अशोक कुमार सिन्हा के संपादन में 'मंजूषा कला' नाम की एक पुस्तक का प्रकाशन उपेन्द्र महारथी शिल्प-अनुसंधान संस्थान, पटना, बिहार द्वारा हुआ है, जो मंजूषा कला को सम्पूर्णता में समझने के लिए पर्याप्त है ।

मटकोर : विवाह के अवसर पर पाँच सुहागिनों द्वारा नदी या कुएँ के पास मिट्टी-कोड़ाई का रस्म मटकोर है। इसी मिट्टी पर कल्श की स्थापना भी होती है और इसी मिट्टी से लगन का चुल्हा भी बनाया जाता है ।

मनौन : देवी की आराधना या उन्हें मनाने के लिए जो गीत होते हैं, वे गीत ही मनौन हैं। अंगप्रदेश में जो मनौनगीत प्रमुखता से पाये जाते हैं, वे मुख्य रूप से शीतला की आराधना में गाये गीत ही हैं लेकिन देवी काली, दुर्गा से संबंधित मनौन गीत की कमी नहीं है।

मरचिरैया : उल्लू पक्षी की एक प्रजाति, जिसकी पीठ का भाग भूरे रंग का

और छाती का रंग भूरा रंग लिए सफेद होता है। गर्मी के दिन में यह गाँव में विशेष कर देखा जाता है। इस चिरैया के संबंध में लोगों का यह विश्वास है कि मरचिरैया को किसी व्यक्ति के मरने का आभास पहले ही हो जाता है और यह वहाँ के किसी वृक्ष पर बैठ कर बोलने लगता है—इसी से इस चिरैया के बोलने पर लोग अपशकुन की आशंका से भर जाते हैं।

महाजनक : प्राचीन अंगप्रदेश का युवक व्यापारी । आश्चर्य की ही बात है कि चम्पा के चांदो सौदागर की कथा तो जन-जन को मालूम है, लेकिन चम्पा के ही युवक सौदागर महाजनक की कथा शायद ही किसी-किसी को । उस समय चम्पा का बन्दरगाह देश के विख्यात आन्तरिक बन्दरगाहों में था ।

महाजनक की कहानी इस तरह है कि अपने सात सौ व्यापारी मित्रों के साथ वह जहाज पर सवार हो गया और निकल पड़ा सुवर्ण भूमि (अंगद्वीप) की ओर । लेकिन दुर्भाग्य देखिए, अभी जहाज बंगाल की खाड़ी को पार भी नहीं कर सका था कि पूर्वी समुद्र के थपेड़ों से जहाज ही टूट गया । लहरों के भीषण उत्पात से महाजनक के व्यापारी साथियों का रक्त-स्राव हो चला और देखते-ही-देखते समुद्र की नीली लहरें रक्तिम हो चलीं ।

यह देख महाजनक जहाज के मस्तूल पर जा चढ़ा । बदन को तेल से चिकना किया और कूद गया समुद्र की चक्रवाती लहरों पर । महाजनक की देह अपने ही मित्रों के रक्त से लाल हो रही थी, लेकिन वह हिम्मत नहीं हारना चाहता था, उसने दुगने वेग से लहरों को काटना शुरू किया । उसकी साँसें फूलने लगी थीं । हाथ-पाँव शिथिल हुए जा रहे थे । आँखें एकदम निस्तेज । फिर भी अपने प्राणों की शक्ति निचोड़ कर वह निकल जाना चाहता था । उसके पास सहारा के नाम पर जहाज का एक तख्ता भर था, जिसके सहारे वह तैरे जा रहा था ।

कि तभी समुद्र की देवी (शायद उस प्रदेश की राजरानी) मणिमेखला वहाँ पहुँची और उसे इस तरह समुद्र के बीच जीवन के लिए संघर्ष करता देख कहा, ''युवक, तुम इस तरह उद्यम क्यों कर रहे

हो, जबकि तुम्हें मालूम है—इस समुद्र का कोई किनारा तुम्हारे सामने नहीं और जब किनारा नहीं हो, श्रम ही निरर्थक है । तुम तो तट पर पहुँचे बिना ही मर जाओगे ।''

यह सुनकर महाजनक की सम्पूर्ण चेतना जैसे लौट आई । उसने कहा, ''लोक में जब तक बन पड़े, मनुष्य को श्रम करते ही रहना चाहिए, भले ही कोई किनारा दिखे या न दिखे या उसकी मृत्यु ही क्यों न निकट हो । उद्यम करता मरूंगा, तो मुझे भी पछतावा नहीं होगा और अपने देवों-पितरों के ऋण से भी मुक्त हो जाऊँगा ।''

महाजनक की इस उक्ति को सुन मणिमेखला ने पुनः-पुनः कहा कि जिस उद्यम का कोई परिणाम ही नहीं निकले, वैसे उद्यम से क्या? तुम्हारी मृत्यु निश्चित है ।

लेकिन देवी की यह भविष्यवाणी महानाविक को बेचैन नहीं कर सकी, बल्कि उसने और भी दृढ़ता के साथ गीता के स्वर में कहा कि मनुष्य को परिणाम की चिन्ता किए बगैर अपने कर्म में लीन रहना चाहिए । देवी, देखती नहीं कि मेरे सभी मित्र मृत्यु को प्राप्त कर गये हैं, फिर भी सागर के किनारे पहुँच जाने के लिए मैं उद्यमरत हूँ ।

कहते हैं, महाजनक का यह दर्पभरा वचन सुन, देवी मणिमेखला ने अपनी बाँहें फैला दीं और देवी की कृपा से ही वह पुनः अपनी जन्मभूमि चम्पा लौट आया । अंग महाजनपद के इस महानाविक महाजनक की कथा श्रीजयचन्द्र विद्यालका के इतिहासग्रंथ 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' में भी दर्ज है ।

महुआ घटवारिन : महुआ घटवारिन उत्तरअंग प्रदेश की एक लोकगाथा की नायिका है, जिसकी लोकप्रियता विशेष कर रेणु की कहानी 'तीसरी कसम' उर्फ मारे गये गुलफाम, से हुई। इसमें आई कथा के अनुसार महुआ अपनी सौतेली माँ के द्वारा घाट पर व्यापार के लिए आए एक व्यापारी के हाथों बेच देती है और गरजती कोशी के बीच धार में महुआ को इसका पता चलता है तो घटवारिन की बेटी होने के कारण सालन की उफनती कोशी में कूद तैरती हुई भाग चलती है। इस

लोककथा पर रवींद्र भारती की एक कथापुस्तिका भी प्रकाशन दिल्ली (२०११) से प्रकाशित है। अंगिका के कवि भगवान प्रलय संकलित यह अभी तक अप्रकाशित है। इसके कई अंशों का पाठ उन्होंने अनेक मंचों से किया भी था। कथाकार शिवकुमार शिव ने इसी लोकगाथा के आधार पर कथाकार रंजन के आग्रह पर हिंदी में महुआ घटवारिन उपन्यास लिखा है जो मूल लोककथा से बहुत कुछ भिन्न है और यह आधुनिकता लाने के मोह के कारण। इन तमाम बातों को कथाकार ने अपने फेसबुक पर विस्तार से लिखा है। फिल्म निर्देशक-निर्माता शीतांशु अरुण जी इस लोक गाथा पर इसी नाम से एक फिल्म बनाई है।

महा शिवरात्रि : यूं तो अंग क्षेत्र में भी प्रत्येक माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि की तरह मान्य है लेकिन इससे अलग फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात ऐसी रात है, जो महा शिवरात्रि से संबंध रखती है।

अंग प्रदेश में महा शिवरात्रि का महत्व इस कारण भी बहुत अधिक है कि यह अंगप्रदेश शिव की भूमि ही माना जाता है । गंगा के उत्तर में सिंहेसर थान से लेकर अजगैवी घाम, बूढानाथ धाम, बटेश्वरनाथ, देवघर, बासुकीनाथ, के अतिरिक्त जमुई का सिमरिया महादेव धाम, नाथनगर का मनसकामना थान, गोनूबा धाम, जगदीशपुर का धनकुंडनाथ, बाँका का जेठोर नाथ, ऊँचेनाथ, दुमका का चुटोनाथ, दुमका का ही गुप्तकाशी मलूटी, देवघर का ही त्रिकुटेश्वर नाथ अंगप्रदेश में शिवोपासना की प्रमुखता को दर्शाते प्रमुख शिवक्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में जब महाशिवरात्रि का विवाहोत्सव संपन्न होता है, तब पूरा अंगप्रदेश शिवलोक ही बन जाता है। यह स्मरणीय है कि, मंदार को शिव का भद्रासन कहा गया है, जो दक्षिण की ओर से देखने पर यह पर्वत लिंग-रूप में शिव से कुछ भी नहीं दिखता।

महिषी : तंत्रसाधना का अति प्रमुख स्थान। अंग प्रदेश के सहरसा जिले का एक प्रमुख गाँव, जो कभी विक्रमशिला बौद्ध महाविहार महायानी

तंत्र शाखा का प्रमुख केन्द्र था। एक धार्मिक मान्यता के अनुसार यहाँ सती के नेत्र का तारा गिरा था, इसीसे यह शक्तिपीठ भी है।

मालगुएडवे : मालगुएड़वे संथाल परगना में बसी पहाड़िया जनजाति का विशिष्ट पर्व है, जिसमें सिर्फ माल पहाडिया ही नहीं, संवारिया के अतिरिक्त कुमारभाग पहाड़िया भी भाग लेते हैं । बारह वर्षों के बाद आनेवाले इस पर्व में बलिष्ठ भैंसे का सामूहिक शिकार किया जाता है। मालगु का अर्थ ही भैंसा होता है और एडवे का अर्थ है, गिराना। इस पर्व में पहाड़ी के किसी सपाट क्षेत्र में एक मजबूत खूँटे से भैंसा को बांधकर पहाडिया तेज बाद्य-गान करते हैं, जिससे उत्तेजित उछलता-कूदता भैंसा निस्तेज होकर गिर जाता है। तब पहाड़ियों का पुगारी, देवासी, आता है, जो पहले पीछे की टांगों पर, फिर आगे की टांगों पर प्रहार करता है; उपस्थित पहाड़िया भी इसमें शामिल हो जाते हैं। शिकार हुये भैंसे का माँस घर-घर पहुँचाया जाता है। यह पर्व एक महीने तक कायम रहता है।

मोती दाय : मोती दाय भागलपुर के उत्तरी क्षेत्र नौगछिया के उजानी ग्राम की निपुती भक्तिन थी, जो जब कभी गोबर या करसी के लिए निकलती, तो चरवाहे अपनी गायों को हटा लेते, यह सोचकर कि कहीं उनकी मवेशियां भी बांझ न हो जाए—इससे दुखित होकर मोती दाय ने कुलदेवी गाहील के गहवर को ही खुरपी से कोड़ना शुरू कर दिया, तो देवी गहील ने प्रकट होकर उसके दुख और क्रोध का कारण पूछा। जब उसने बांझ होने के कारण अपने अयश की बातें सुनाईं, तो दुखित कुलदेवी इन्द्र के पास पहुँची और दुख के निदान का मार्ग पूछा । इन्द्र ने कहा कि अपने पूर्वजन्म के कर्मों के कारण वह संतानवती नहीं हो सकती । कुलदेवी ने जब वही बात मोती दाय को बताई, तो दुखित होकर उसने कदलीवन में जल जाने की बात कही और यही बात कुलदेवी ने जब पुनः इन्द्र को बताई, तो इन्द्र ने कहा, मोती दाय को पुत्र तो होगा, लकिन छठी की बाद ही वह मर जायेगा । कुलदेवी से

यह बात सुनकर मोती दाय को खुशी ही हुई । उसे पुत्र भी हुआ और भविष्यवाणी के अनुसार ही वह छठी की रात ही मर गया, लेकिन मोती दाय इसीलिए बहुत दुखित नहीं थी कि उसे अब कोई बांझिन तो नहीं कहेगा । यह कथा मैंने उजानी में ही मंजूषा कला-प्रशिक्षण के दौरान सुनी थी, कथा के साथ गीत की कुछ पंक्तियाँ भी वह गाती रही थी। इसीसे यही लगता है कि यह मोती छाया कोई कथागीत है या फिर लघुलोकगाथा, जो लोक में सिर्फ कथा रूप में ही प्राप्त है।

मौनी अमावस्या : मौनी अमावस्या और माघी अमावस्या दोनों एक ही पर्व के नाम हैं और अंगप्रदेश में इसका कितना महत्व है, यह इससे ही समझा जा सकता है कि इस पर्व पर लगनेवाला मेला कभी महीने भर के लिए अपने अस्तित्व में बना रहता था। सिमरिया घाट पर तो भक्तों का जो जुटाव तो आज देखा जाता है । वह कभी अजगैवी धाम में और भी भव्यता में दिखता था । माघी अमावस्या मौनी अमावस्या इसलिए है कि इस व्रत में मौन रहकर गुप्त दान को बहुत अधिक महत्व प्राप्त है। कुछ दशक पूर्व तो मौनी अमावश्या के अवसर पर अजगैवी धाम से पिटारा कॉमड़ लेकर वैद्यनाथ धाम जाने की भव्य परम्परा थी।

रंगाढारी : एक ऐसा लोकदेव, जिसकी कल्पना लोकमानस में रुद्र की तरह है, जो किसी भी छोटी-सी भूल पर बेहद क्रोध में आ सकते हैं, इसीसे अधिकांश हिन्दुओं के घर के एक कोने (मोखे) से लगा स्थान होता है, जिस प तेल और सिंदूर के तिलक चिन्ह से को पहचाना जा सकता है ।

रमखेलिया : जिस तरह कीर्तनिया नाच में कृष्ण-लीलाओं को केंद्र में रख कर ढोल-मृदंग-झाल के साथ गायन-नृत्य किया जाता है; उसी तरह इन वाद्य यंत्रों के साथ राम के जीवन-प्रसंगों की, रमरेलिया ना-मंडली में प्रमुखता होती है। कभी ये दोनों लोकनृत्य दक्खिनी अंग और उत्तरी अंग में काफी लोकप्रिय रहे। कभी रमखेलिया का केन्द्र अंगुत्तराप का

गोगरी जमालपुर था लेकिन अब कीर्त्तन की तरह रमखेलिया के पाँव भी उखड़ गये हैं। डॉ. अभयकांत चौधरी और नरेश पाण्डेय चकोर द्वारा लिखित 'अंगिका साहित्य का इतिहास' में भी रमखेलिया लोकनृत्य का उल्लेख आया है।

राखी : राखी एक लोकपर्व है, जो सावन पूर्णिमा को संपन्न होता है। यूं तो यह लगभग संपूर्ण भारत में मनाया जाता है लेकिन अंगप्रदेश में इस पर्व की अपनी पृष्ठभूमि है, जिसमें अंग राज्य-संस्थापक चक्रवती राजा अंग के पिता को स्मरण किया है। दो दशक पूर्व तक ब्राह्मण ही पुरुषों की कलाई पर कच्चे रंग के रंगे धागे बाँधते थे—यह मंत्र पढ़ते हुए :

येन बद्धो बलि राजा दानवेन्द्रो वहाबलः।
तेन त्वां प्रतिध्वावामि रक्षे माचल माचलो ॥

राजा ढोलन सिंह : लोकगाथा के नायक राजा ढोलन का उल्लेख डॉ. कुशवाहा ने भी 'अंगिका साहित्य केरोॅ इतिहास' में किया है लेकिन इसकी सम्पूर्ण कथा कभी मैंने अपनी दादी से ही सुनी थी, जो बीच-बीच में लोकगाथा की पंक्तियां भी गुनगुनाती रहती थीं । कथा के अनुसार हरिचन सिंह भगदत्तपुर के राजा थे । एक बार कदलीवन में शिकार खेलते हुए उन्होंने उस हिरण को अपने तीर से मार डाला, जो एक साधु की कुटिया के बाहर कुटिया की रखवाली कर रहा था। नतीजा यह हुआ कि राजा हरिचन का राजपाट देखते-देखते समाप्त हो गया और विवश होकर वह अपने पुत्र को लेकर स्वर्णद्वीप (पिंगलद्वीप) पहुँच गये, जहाँ के राजा ने हरिचन के पुत्र ढोलन को उसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उसे अपना मंत्री बना लिया । बाद में ढोलन के साथ स्वर्णद्वीप के उस राजा की पुत्री मरवन का विवाह भी हुआ । कुछ समय और बीतने पर हरिचन अपने पुत्र ढोलन और पत्नी के साथ भगदत्तपुर लौट आये, जहाँ आकर राजकुमार ढोलन किसी अन्य रूपसी के प्रेम में फँस कर अपनी पत्नी मरवन को भूल बैठा । बाद में ढोलन की पत्नी

ने एक योगी को भगदत्तपुर भेजा, जो सारंगी पर गा-गा कर राजकुमारी मरवन की सारी स्थितियों को सुनाया है, जिसे सुनकर राजकुमार ढोलन स्वर्णद्वीप पहुँच कर राजकुमारी मरवन को लिए अपना राज्य लौट आया । अंगिका के कवि कृपाला से राजा ढोलन की लोकगाथा का एक अंश मुझे उपलब्ध कराया है, जिसकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं :

करमों के लिखलों विधाता केन्हौ कें नै जाय छै हे राम
किये विधि लिखलकै लिलरवा न रे मोरा
राजा ढोलन रात-दिन बसै ससुररिया न रामा
सब दिन बसै ससुररियो रे
एक दिन ऐसनों भेलै ससुर-जमाय झगड़ा भेलै
ससुर, दमादों में झगड़ा लगलै न मोरा।

लचिका रानी : लचिका, अंगिका लोकगाथा लचिका रानी की नायिका; जिसके रूप-गुण की प्रशंसा सम्पूर्ण दक्षिणी अंगप्रदेश में है। शिकार को आया अंगप्रदेश के पश्चिमी राज्य के राजा की दृष्टि जब सरोवर में स्नान करती लचिका रानी पर पड़ती है, तो वह अपने सैनिकों को, राजा की हत्या के बाद लचिका रानी को बंदिनी बनाकर ले आने के लिए भेजता है। ऐसा होता भी है। लेकिन यह रानी रूपवती ही नहीं, वैसी ही गुणवती भी है। आक्रमणकारी राजा के राज्य की सीमा पर पहुँचते ही रानी राजा के सामने यह शर्त्त रखती है कि बारह कोस की दूरी पर स्थित राजमहल में वह बारह वर्ष के बाद ही पाँव रखेगी और जिस शर्त को मोहान्ध राजा स्वीकार भी लेता है। इस शर्त्त के पीछे राज यह है कि रानी गर्भवती है और इस तरह अपनी दासियों के बीच वह राजकुमार को जन्म भी देती है, पालती-पोसती भी है और इस तरह बारह वर्ष की अवधि में वह युवक भी हो जाता है। परिणाम यह होता है कि वह अपने विश्वासी सेवकों के साथ उस अत्याचारी राजा पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर देता है । फिर उसकी पुत्री के साथ अपने पुत्रका विवाह कर लचिका रानी अपना राज्य लौट आती है। लचिका रानी लोकगाथा की कथा पर कथाकार अनिरुद्ध प्रसाद विमल

और डॉ. विद्या रानी, डॉ. प्रतिभा राजहंस ने अलग-अलग हिन्दी में उपन्यासों का सृजन भी किया है। यह इस लोकगाथा की लोकप्रियता का प्रमाण है।

लहसन मालाकार : लहसन मालाकार अंगदेश की चम्पा नगरी के प्रख्यात चित्रकार थे। अपने पति लखेन्द्र की मृत्यु के बाद बिहुला ने इसी कलाकार को बुलाकर मंजूषा पर देवराज इन्द्र, देवाधिदेव शिव, माता पार्वती, कैलाश, गंगा, हनुमा के अतिरिक्त पाँच बहिन विषहरी, स्वसुर चन्द्रधर श्रेष्ठी, सास सोनिया साहुन, छवो भैसुर, धन्ना-मन्ना प्रधान प्रहरियों के अतिरिक्त खान-पठान, मोर, बिलार, नेवला, टूटी चूड़ियाँ, बिखरे सिन्दूर, मणियार नाग के चित्रों को बनाने के साथ नैहर परिवार के सगे संबंधियों में माता मोनिका, पिता बासु सौदागर, तीन भाई—शंखा, हंसा, वंशा, भाभियों के साथ सेमापुर घाट से लेकर गलंत्री घाट तक के चित्रों को बनाने कहा था । चित्रों की सूची और भी लम्बी है और लहसन मालाकार ने बिहुला के निर्देश पर ही उन चित्रों को हरे, पीले, गुलाबी रंगों में मंजूषा पर उतारा था ।

लाला महाराज : लाला महाराज भी लालमैन बाबा की तरह ही मोची जाति के ही लोकदेव हैं लेकिन इनकी लोकप्रियता और प्रसिद्धि का कारण इनकी लोकसेवा है। लाला महाराज के संबंध में ऐसी कथाएं प्रचलित हैं कि अपनी दैवीय शक्ति से ये मृत पशुओं को भी जिंदा कर देते थे और इसी कारण वह अपनी जाति में मृत्योपरांत लोकदेव की तरह पूजित हो गये । इनके जन्मस्थान के संबंध में एक मान्यता यह भी है कि इनका जन्म सिंहेसर और मधेपुरा के मध्य लालपट्टी में हुआ था । बस्ती का यह नाम उनकी मृत्यु के बाद उनके भक्तों ने रख दिया हो, तो आश्चर्य नहीं ।

लालमैन बाबा : लालमैन बाबा मोची जाति के लोकदेव हैं। इनका एक साथी था । प्राप्त जानकारी के आधार पर उसका नाम मनसा राम था।

दोनों में गहरी दोस्ती थी । दोनों ही काफी बलिष्ट कदली वन (नौगछिया से मधेपुरा तक फैला घना जंगल) में निर्भय विहार करने वाले थे। कि एक दिन लालमैन के सम्मुख एक बाघिन आ गई और आक्रमण के लिए गुर्राने लगी । स्थिति बिल्कुल असामान्य थी, लालमैन उस पर आक्रमण नहीं कर सकते थे, क्योंकि वह स्त्री जाति से थी और बाघिन थी कि आघात के लिए पूरी तरह तैयार हो रही थी । उस स्थिति में उसने अपने मित्र मनसा से कहा कि वह बाघिन के द्वारा लालमैन को मारे जाने की सूचना उसके परिवारवालों को अवश्य दे और इसके बाद ही उन्होंने अपने को बाघिन के आगे कर दिया । बाघिन ने उनके माँस से अपनी भूख मिटाई और हड्डियों को कदलीवन में ही छोड़ दिया । उधर मनसा राम ने इसकी सूचना देर से लालमैन के परिवारवालों को दी, जिससे कुपित होकर परिवारवालों ने मनसा राम को पीट-पीट कर मार डाला और एक साथ ही लाल मैन की हड्डियाँ और मनसा के शव की, दो अलग-अलग जगहों पर, अन्त्येष्टि क्रिया कर दी । चूँकि लाल मैन अपने जीवनकाल में भी गाँववालों की रक्षा करते रहते, इसीसे उनकी मृत्यु के बाद उनकी जातियों के लोगों ने उन्हें लोकदेव के रूप में पूजना शुरू किया ।

लोकेश्वरी देवी : महायानियों की देवी है। मधेपुरा से दस किलोमीटर पूर्व –दक्षिण कोण पर स्थित बेलीगढ़ महायानियों का सिद्ध स्थल माना जाता रहा है और इसी स्थल पर लकेश्वरी देवी के प्राचीन मंदिर के अवशेष भी पाये गये हैं। लोकेश्वरी देवी के संबंध में हरिशंकर श्रीवास्तव शलभ जी ने भी उल्लेख किया है।

लोढ़ियारी नृत्य : बहुत खोजबीन के बाद भी अब इस लोकनृत्य के होने का पता नहीं लगा। लेकिन आज से तीन दशक पूर्व अंगप्रदेश के बाँका जिले में इसकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आई थी। इस लोकनाट्य में नाच का नायक एक मोटा लट्ठ लेकर मंच पर आता और हास्य-विनोदपूर्ण गीत गाता। इस नायक के अंग पर लाल रंग का वस्त्र

होता, जो कौढ़ियों से सजा रहता था; इसके लट्ठ में भी कौड़ियाँ गुंथी हुई होतीं । डॉ. चौधरी और श्री चकोर ने अपने इतिहास में लोढ़ियारी नाच का एक गीतांश भी रखा है।

लोरिक : यदुवंशी लोरिक, लोकगाथा लोरिकायन के वीर पुरुष हैं, जिनके जन्मस्थान के संबंध में विभिन्न मत हो सकते हैं लेकिन इनके कर्मक्षेत्र के संबंध में ऐतिहासिक खोज के बाद इसमें कोई शंका नहीं रह गई है कि लोरिक का कर्मक्षेत्र अंगप्रदेश के सहरसा का हरदीगढ़ ही था, जहाँ लोरिक का किला भी वर्तमान है। लोरिक की जीवनकथा इतनी लंबी है कि लोरिकायन के संबंध में एक लोकोक्ति ही प्रचलित है—मानस में सात कांड ही, लोरिक में कांड अनेक। लेकिन लोरिक की कथा जो लोरिक गाथाकाव्य में प्राप्त है, उसे निम्नांकित वर्गों में बाँटा जा सकता है, लोरिक और सँवरू का जन्म, सँबरू का ब्याह, लोरिक का ब्याह चनमा का उद्धार, हल्दी की लड़ाई, नेउरापुर की लड़ाई, पिपरी की पहली लड़ाई, सँबरू के साथ पिपरी की दूसरी लड़ाई लोरिक की मृत्यु। जहाँ तक लोरिक की मृत्यु का प्रश्न है, तो यह बता देना आवश्यक होगा कि संथाल परगना की वह पहाड़ी ही है, जिसकी गुफा में लोरिक के प्रवेश करने और फिर नहीं लौटने की कथा अब भी लोकमानस में विद्यमान है।

लोरी : लोरियाँ बाल-गीत नहीं, बल्कि माताओं के गीत हैं, इन्हें बाल-गीत में इसलिए रख लिया गया है कि ऐसे गीतों के विषय बहुत सरस, कोमल होते हैं, जिन्हें शिशु अपनी कल्पना में, अपने सरल ज्ञान से सहज ही ला सकते हैं । विशेष कर ऐसे गीत में पदसमूह की कुछ ऐसी आवृत्तियाँ होती हैं, जो उस सरस और शांत संगीत के सृजन में सहायक होती हैं कि शिशु को तन्द्रावस्था में ला दे । कहना न होगा कि लोरियाँ, सरल-निर्मल लय-सुर से बंधे होने के कारण इसमें बाहरी विषयों से मन को काट देने की अद्‌भुत क्षमता होती है और सुर-लय में इतराता-डूबता शिशु आखिर नींद की अवस्था में पहुँच जाता है।

जैसाकि यह कहा गया कि लोरियों के विषय वे होते हैं जो बाल संवेदनाओं में अट सके, लेकिन इससे अलग लोरियाँ ऐसी भी हो सकती हैं, या होती हैं, जिनमें बालरुचि से अलग विषयों का वर्णन होता है, लेकिन इसी कारण उनके लोरी न होने की शंका नहीं की जा सकती । भले ही शिशु ऐसे विषयों को ग्रहण न कर सके, लेकिन उनमें वह परिचित-सा सुर-संगीत तो होता ही है, जिसका असर शिशुओं के मस्तिष्क पर जादू का-सा होता है । कहना न होगा कि ऐसी लोरियाँ अपने विषयों को लेकर नहीं, सुर-लय को लेकर लोरियाँ हैं ।

विजयमल : विजयमल अंगिका लोकगाथा कुँअर विजयमल का नायक है, जो धुनधुनिया राज के राजा धुरमल सिंह का छोटा पुत्र है। धुरमल सिंह की रानी मैनावती को जब पहले पुत्र हिरमल की प्राप्ति हुई, तो समय आने पर उसका विवाह आगपुर के राजा की एकलौती पुत्री सोनामंती से कर दिया गया और राजकुमार को सिंहासनासीन कर राजा ने सन्यास ले लेता है। जंगल में रहते हुए अभी राजा का एक वर्ष भी नहीं बीतता है कि स्वप्न में भगवती ने उससे कहती है कि वह अपना राज्य लौट जाए, क्योंकि उसे एक पुत्र की प्राप्ति होने वाली है । संन्यासी धुरमल सिंह को यह बात अजीब-सी लगती है, लेकिन देवी भगवती का आदेश था, तो अपना राज्य लौट आता है और समय पर उसे एक और पुत्र की प्राप्ति होती है, जिसका ही नाम राजपंडितों द्वारा विजयमल रखा जाता है।

अभी विजयमल की उम्र छः महीने की भी नहीं हुई होती है कि उसके विवाह की चिंता राजा को होने लगती है और यह बात वह अपने ज्येष्ठ पुत्र हिरमल को बताता है; यह भी कि पर्वत गढ़ के राजा बावनसुआ की पुत्री तिलकी से विजयमल का विवाह हो जाए, तो राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से उचित होगा । यह सुनकर हिरमल अपने कुछ मंत्रियों और सेवकों को लेकर पर्वतगढ़ की ओर निकल जाता है। तीन दिनों की यात्रा के बाद वह पर्वतगढ़ पहुँचता है और गढ़ के पास ही बने सैराघाट सरोवर के समीप सेवकों को छोड़ स्वयं मंत्रियों के साथ

बावनसुआ के महल में मंत्रियों के साथ पहुँचता है । आने का कारण बताते हुए वह बावनसुआ को अपने पिता धुरमल का पत्र भी सौंपता है। बावनसुआ यह प्रस्ताव स्वीकार लेता है और निश्चित तिथि को अपने पुत्र माणिकचंद तथा बावन हजार बरातियों को लेकर तिलक करने धुनधुनिया पहुँच जाता है, जो अपने साथ विजयमल के लिए बावन लाख रुपये, बावन मन सोना, बावन लाख के वस्त्र साथ लेकर आया है। लेकिन माणिकचंद के कारण बावन लाख के बर्तन नहीं आ सके हैं—जिसके कारण हिरमल और माणिकचंद में काफी विवाद भी होता है । वैसे आदर-सत्कार से प्रसन्न बावन सुआ की पहल से स्थिति सामान्य होती है, लेकिन माणिकचंद इस अपमान को भूल नहीं पाता और पिता को अपने पक्ष में कर यह निर्णय लेता है कि जब धुरमल बराती साथ पर्वतगढ़ आयेंगे, तब घने जंगल को जेल में बदल कर और उसकी रखवाली पठान सरदान मुण्डे खां, टुण्डी राक्षसिन और उफनती नदी के हवाले कर बारातियों को कैद कर लिया जायेगा । ऐसा होता भी है, लेकिन राजकुमारी तिलकी और उसकी सखी सलखी की चतुराई से कम उम्र के विजयमल की जान बच जाती है और वह अपने घोड़े को पीठ से बंधा अपना राज पहुँच पाता है । इस तरह वह माणिकचंद द्वारा आग में जलाए जाने से बच जाता है।

एक बार जब विजयमल चालीस मन की गुल्ली और अस्सी मन का डंडा लेकर खेल रहा होता है, तो उसका साथी कहता है कि तुम इतने ही बहादुर हो, तो अपने पिता और भाई को बावन सुआ के कैद से क्यों नहीं छुड़ा लाते ।

विजयमल अपनी भाभी सोनामंती से सबकुछ जानकर अपने सैनिकों के साथ पर्वतगढ़ की ओर निकल जाता है, और सैनिकों को अन्यत्र रखकर स्वयं सैराघाट पहुँच जाता है। राजकुमारी तिलकी की सखियां उससे बताती हैं कि वह मना करने के बाद भी सरोवर से नहीं हटता और पीतल के घड़े तक में गुलेल से छेद कर गया । जब सलखी के साथ स्वयं राजकुमारी वहाँ पहुँचती है, तो देखती है, वहाँ एक किशोर उम्र का साधु एक घाट पर बैठा है, और तीन घाटों पर उसके कमंडल, खड़ाऊँ और चूटे पड़े हुए हैं। संवाद के दौरान तिलकी जानती

है कि वह उसका पति ही है, जो बारह वर्ष के बाद मिल पाया है ।

विजयमल तिलकी से ही जानता है, उसके पिता, भाई और बराती कहाँ-किस जंगल में हैं ? विजयमल हिंछला घोड़े पर बैठ कर जलती नदी पार कर जाता है, तलवार से जंगल काट डालता है, मुण्डे खां को घायल करता उसे भागने के लिए मजबूर करता है, टुण्डी राक्षसिन का शिरोच्छेद कर, चौदह मन का ताला तोड़, पिता, भाई, बारातियों को मुक्त करता है । और उन्हें लेकर सैराघाट पहुँच जाता है । फिर नगर के लोहार, सोनार, हलवाई को वहीं बाजार लगाने को कहता है। सभी के साथ लोहारों की दुकानें सज जाती हैं और सभी किस्म के अस्त्र बनने लगते हैं । उधर मुण्डे खां और माणिकचंद को इसकी जानकारी मिलती है, तो बड़ी सेना लेकर आक्रमण के लिए चल पड़ते हैं । सैराघाट के मैदान में ही दोनों सेनाओं के बीच भीषण युद्ध होता है और मुण्डे खां की सेना परास्त होती है । इस बीच हिंछला घोड़े पर बैठ विजयमल पर्वतगढ़ के राजमहल में पहुँच जाता है और राजकुमारी तिलकी को घोड़े पर बिठा कर अपना पिता, भाई और सेना के साथ अपने राज्य लौट आता है ।

कुँअर विजयमल लोकगाथा की कथा चन्द्रप्रकाश जगप्रिय ने प्रस्तुत की है, जिसमें लेखक ने धुरमल को कजंगल (राजमहल, संथाल परगना) का राजा बताया है, डॉ. प्रदीप प्रभात भी कुछ ऐसा ही मानते हैं, जिन्होंने कुँअर विजयमल का संकलन भी किया है, जो अभी अप्रकाशित ही है । डॉ. आभा पूर्वे का हिन्दी में लिखा उपन्यास 'विजयमल' इसी लोककथा पर ही आधारित उपन्यास है ।

विदापत नाच : विदापत नाच को ठीक से समझने के लिए कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोतार्ज 'विदापत नाच' को पढ़ना जरूरी और पर्याप्त होगा, जिसमें इन्होंने साफ शब्दों में लिखा है कि यह लोक नाटक या नाच भागलपुर से पूर्णिया में आकर लोकप्रिय हुआ और इसे और भी लोकप्रिय बनाने के लिए रेणु ने अपने गाँव में एक रंगमंच का गठन भी किया था। विदापत नाच पद्यात्मक गीतों-संवादों पर आधारित

लोकनृत्य है, जिसमें अंगिका की बिहुला विषहरी, दीनाभद्दरी, गोपीचंद, जैसी लोकगाथाओं की प्रस्तुति होती है। ढोल, झाल, मृदंग जैसे वाद्य के संगीत के अतिरिक्त मुखौटों का प्रयोग भी आम है। इस लोक्नाट्य के संबंध में रेणु जी ने लिखा है कि एक ओर जहाँ समाज के भद्र इसे देखने-सुनने में अपनी हैठी समझते हैं, वहीं मुसहर, दुसाधों, धांगड़, समाज में विदापत नाच की लोकप्रियता शिखर पर होती है। रेणु का यह खुला वक्तव्य सब कुछ एक भटके में समझा जाता है। रेणु-गाँव के ही लेखक डॉ. जनार्दन यादव ने विदापत नाच को अंगिका लोकनाटक मानते हुए इसकी भाषा को भी अंगिका ही लिखा है।

विरहा : विरहा, जो अपने नाम से ही स्पष्ट है कि यह करुण रस का लोकगीत है, जिसे अधिकतर गाँव में मवेशी चराते भरवाहे के मुख से सुना जा सकता है। कभी अंग इतिहास के विद्वान जानकार ज्योतिषचंद्र शर्मा ने अंगिका के दो विरहा गीतों को सुनाकर नौगछिया तक की यात्रा को सुखद बना दिया था। इसे नारदी की तरह बहुत ऊँचे स्वर में गाया जाता है ।

विषहरी : विषहरी मानस पुत्रियां हैं। लोकमान्यता के अनुसार एक बार जब भगवान शिव सोनदह सरोवर में स्थान कर रहे थे, तब उनकी खुली जटा के पाँच केश टूट कर जल में प्रवाहित होते हुए सरोवर के किनारे जा लगे । कालान्तर में वे केश कमल फूलों में परिवर्तित हो गये। स्नान के ही क्रम में दूसरी बार जब भगवान शिव की दृष्टि उन फूलों पर पड़ी, तो उन्हें उठाकर मंदार पर्वत के दक्षिण में स्थित कोकिला वन के मठ में रख दिया । लोकविश्वास के अनुसार एक बार जब शिव जी बारह वर्षों के लिए समाधि में चले गये, तो इसी बीच उन कमलों से पाँच विषहरी कन्याओं का जन्म हुआ, जो मैना, दुतिला, विषहरी, जया और पद्मा के नाम से जानी गईं।

विसुरॉत : विसुरॉत अंगप्रदेश के प्रमुख लोकदेवों में एक हैं, जिनकी

संपूर्ण जीवनकथा प्राप्त लोकगाथा में बद्ध है। डॉ. रमेश मोहन शर्मा आत्मविश्वास का शोध विषय ही यह लोकगाथा रही है और इन्होंने विस्तार से लोकगाथा को गद्यबद्ध किया है । विसुरॉत का जन्म भागलपुर के सबौर अंचल के गाँव भिट्टी चनेली में हुआ था, जो अपनी हजारों गायों को लेकर पचरासी पहुँच जाते हैं। फिर पत्नी के द्विरागमन को लेकर वह गायों का भार अपने छोटे भाई अवधा ओर धोरैय नन्हुआ पर छोड़कर गाँव लौट आते हैं । हिरागमन के बाद वह गायों की याद भी भुला बैठते हैं लेकिन एक रात भगवती द्वारा याद दिलाने पर वह माँ चंपावती और बहिन भागोमंती के रोकने के बाद भी नहीं रुकते और रातो रात निकल कर सूजागंज बाजार पहुंचते हैं जहाँ चिंताराम जुआरी के साथ समय बिताने के लिए जुआ भी खेलते और अपनी हजारो गायें हार जाते हैं फिर जीतते हैं, तो जुआरी की पत्नी तक जीत जाते हैं और सारे धन को लेकर वह पचरासी की ओर बढ़ जाते हैं। मार्ग में ही उनसे मिलने आ रहीं उनकी माँ चंपावती जब जुआरी चिंतागाम की पत्नी को देखती है, तो मुक्त करने का आदेश देती है और बासुकीधाम जाने के निमित कॉवर लेकर भिट्टी लौट आती है।

इधर चैत पूर्णिमा के लिए विसुरॉत के अभिन्न गोडी मित्र को अधिक-से-अधिक दूध की जरूरत है इसलिए हाँक देने के बावजूद वह विसुरॉत को कोशी पार कराने में दिलचस्पी नहीं लेता है पर माता कोशी की कृपा से वह पार उतर जाते हैं, फिर वह जानते हैं कि सारे बछड़े इसलिए बाँध दिये गये हैं कि मोहन को दूध की जरूरत है। यह सुनकर उन्हें बेहद गुस्सा आता है और जब मोहन दूध लेने आता है, तो उसे खूंटे से बाँधकर पिटवाते हैं, जिसकी शिकायत कह अपनी माँ भौरा से करता है । पुत्रमोह के कारण वह भगवती से विसुरॉत की मृत्यु का वरदान माँगती है। उसे मारने के लिए दो बब्बर शेर पहुंचते हैं लेकिन विसुरॉत शेरों पूँछे काट उन्हें भागने के लिए मजबूर करते हैं और इसकी जानकारी जब भौरा को होती है, तो वह लिलिया नाम की बाघिन को मारने भेजती है। विसुरॉत को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो चुका है, इसी से वह बौरनी वृक्ष पर बैठ जाते हैं । बाघिन के पाँवस्पर्श भर से उनकी मृत्यु हो जाती है। स्त्री समझ वह उसकी हत्या नहीं करते ।

विसुरॉत की मृत्यु की खबर उनके करुणा साँढ़ ने लंबी आवाज के साथ दी, तो हजारो गायें डकरती हुईं उनके शव के करीब पहुँच जाती हैं और उन्हीं गायों के बह निकले दध की धार में विसुरॉत का शव कोशी में प्रवाहित हो जाता है। डॉ. आत्मविश्वास के शोधप्रबंध में इस कथा से जुड़ी और भी प्रासंगिक कथाएं मिलती हैं । इस कथा के आधार पर ही कथाकार अंजनी कुमार शर्मा ने अपने हिन्दी उपन्यास किसुरॉत का सृजन किया है ।

वृजाभार : अंगिका लोकगाथा सोरठी वृजाभार के अनुसार वृजाभार नाथपंथी युवा योगी है, जो अपने मामा की इच्छा पर अपनी नव बधू को घर में छोड़कर सोरठी राजकुमारी को इस बात के लिए राजी करने के सारठ जनपद निकल पड़ता है कि वह उसके मामा से विवाह कर ले। सोरठी सारठ के राजा की पुत्री है, जो राजपुरोहित द्वारा कुलनाशिनी की भविष्यवाणी के कारण नदी में प्रवाहित कर दी गई थी, जिसे एक मछुआरे ने पाला था और फिर भेद खुलने पर अपने पिता के पास आ गई थी। वृजाभार सोरठी के पास पहुँचता है। उसके पास एक जादुई बाँसरी है, जिसके प्रभाव से वह सोरठी को अपने मामा के राज तक ले आने में सफल हो जाता है लेकिन सोरठी के वहाँ पहुंचते ही मामा का हृदय परिवर्तन हो जाता है और संतान-मोह से मुक्त हो, अपने भाँजा वृजाभार के हाथों में सोरठी को सौप कर संन्यासी बन जाता है। वृजाभार की कथा पर कथाकार चंद्रप्रकाश जगप्रिय का हिन्दी में एक उपन्यास भी प्रकाशित है और डॉ. तेजनारायण कुशवाहा के अंगिका प्रबंध काव्य 'सवर्णा' में सोरठी वृजाभार के छंदों का सुंदर प्रयोग मिलता है।

व्रात्य : अंग देश का आदि धर्म। व्रात्य से ही व्रत की उत्पत्ति है, जिसमें नियमबद्ध जीवन जीने पर बल होता है। व्रात्यालंबी वायु को ही परम तत्व मानते रहे और जिस तरह वायु निर्बाध गतिशील होती है; उसी तरह व्रात्य भी भ्रमणशील होते थे। वायु को सर्वशक्तिमान माननेवाले इस व्रात्य धर्म से योग की नींव पड़ी होगी—ऐसा विद्वानों का मानना है।

व्रात्य धर्मालंबी सामान्य जीवन-शैली में विश्वास करते थे और अपनी सुरक्षा के लिए तीर-धनुष से ज्यादा गुलेल और मिट्टी की गोलियां अपने साथ रखते थे। रुद्र इस धर्मालंबियों के आरंभ से ही देवता रहे हैं, जो कालातर में महादेव रूप में स्वीकृत भी हुये। अथर्ववेद-काल तक व्रात्य धर्म व्यापक रूप से अंग प्रदेश में स्वीकृत था। संभवतः पश्चिमी भारत से आये धर्म के संपर्क में इनका प्रभाव शिथिल होता चला गया। ऐसा भी हो सकता है कि व्रात्य शब्द की गलत व्युत्पत्ति और अर्थ से व्रात्य धर्मालंबियों में हीनताबोध जमा दिया गया हो और इस तरह वे अपने ही आडंबरविहीन कर्मकांडहीन व्रत की तरह पवित्र धर्म से कटते गये और उन्होंने कलि पूर्व चौदह सौ में पश्चिम से आये वैवस्वत मनु के छठे पुत्र करूप और तितिक्षु के आगमन के बाद, जिन्होंने अंग प्रदेश को अपनी राजधानी बनाई, के द्वारा लाये धार्मिक आचारों को बहुलता में स्वीकार कर लिया।

शीतला माय : शीतला चेचक के रूप में दिखाई देनेवाली लोकदेवी है, जिसे अंगप्रदेश में बूढ़ी माता या भगवती के नाम से भी जाना जाता है। लोकविश्वास है कि शीतला माता को भैरव नाम का एक पुत्र और पाँच पुत्रियां हैं, जिनमें फुलसर और धनसर ही प्रमुख हैं। भयदायिनी की दृष्टि से भैरव की पत्नी मालती का भी विशेष स्थान है। मालती अपने मिजाज से काफी उग्र देवी है, जो अपनी ननदों से भी द्वेष रखती है। लोककथा है कि जब धनसेर और फुलसर की शादी में बराती द्वार पर पहुँची, तो मालती ने सभी बरातियों को निगल लिया था। इसके बाद घनसर फुलसर मायके में ही बस गई थीं। पास-पड़ोस के बच्चों को गोद में लेकर खेलातीं और बूढ़ी माय से कहतीं कि भाभी मालती को एक पुत्र हो जाय, तो वे घर के बच्चे को खेलायेंगी। लेकिन बूढ़ी माँ कहती कि वह कैसे बहू को पुत्रवती होने का वर दे सकती है; उसने तो सात सौ बरातियों को खा लिया है। लोक में बुढ़ी माता को बड़ी माय कहने की भी चलन ह; मालती मँझली माँ है और धनसर-फुलसर छोटी माँ, जिन्हें बोदरी भी कहने का चलन है।

श्रीपाल : श्रीपाल महाभारतकालीन चम्पा के राजा सिंहरथ का पुत्र था, जो सिंहरथ को उम्र के चौथेपन में प्राप्त हुआ था, इसी से उन्होंने श्रीपाल को चंपा के सिंहासन का अत्तराधिकारी घोषित कर फिर अपने छोटे भाई अजीतरथ को राज्य का संरक्षक बना कर संन्यास ग्रहण कर लिया लेकिन स्वयं राजा बनने के लोभ में अजीतरथ श्रीपाल को मरवाने का षढ़यंत्र रचने लगा, जिसकी भनक जब श्रीपाल की माता कमलप्रभा को कुछ विश्वासी सिपाहियों से मिली, तो रानी अपने पुत्र को लेकर कुष्टरोगियों के आश्रम में जा ठहरी और तब तक रुकी, जबतक कि अजीतरथ ने दोनों की खोज-खबर लेना बंद नहीं कर दी लेकिन कुष्टरोगियों के बीच रहने के कारण श्रीपाल भी कुष्टरोगी हो गया। तब श्रीपाल ऐसे रोगियों का प्रधान उबर राणा के नाम से लोकप्रिय हो गया था।

उसी समय उज्जैन के राजा प्रजापाल ने अपनी छोटी बेटी मैना सुंदरी के इस उत्तर के कारण कि वह आपकर्मी है जिसका अर्थ था कि उसका भाग्य उसके कर्मों पर निर्भर है—उसे उबर राणा के साथ ब्याह दिया। कालक्रम में मैना सुंदरी की सेवा के कारण श्रीपाल पूर्ण स्वस्थ हो गया और अपनी पूरी कहानी भी बता दी । तमाम बातों की जानकारी जब श्रीपाल के मामा वसुपाल को हुई, तो वह अपनी बहन के साथ श्रीपाल को अपना महल ले आये और वहीं ससुर से निमंत्रण पाकर श्रीपाल अपने ससुर प्रजापाल से मिलने गया। बाद में वह माता कमलप्रभा और पत्नी मैना सुंदरी को कहीं छोड कर ससुर के साथ परदेश को निकल गया। वह विंध्याचल पर्वत को पारकर कई राज्यों के राजाओं को प्रभावित कर संचयपुर की राजकुमारी को वरण करता है। आगे वह पोत की छत से छल से विकराल नदी में गिरा दिए जाने पर, थाणे राज्य पहुँच जाता है, जहाँ अपने रुप-गुण के कारण वहाँ की राजकमारी को भी वरण करता है और आखिर में अपार धन और विशाल सेना के साथ लिए श्रीपाल अपनी माँ कमलप्रभा तथा तीनों रानियों के साथ चम्पा की ओर प्रस्थान कर गया । मार्ग में कुंदलपुर की राजकुमारी तिलोत्तमा को भी संगीत-प्रतियोगिता में परास्त कर उसे

पत्नी रूप में स्वीकार करता है। इसी तरह कोलहांगपुर की राजकुमारी जयकुमारी को अपनी कला से रानी बनाते; सोपारा नगर की राजकुमारी तिलक मंजरी को नया जीवन दे और उसे भी रानी के रूप में सवीकार कर सीधे चंपा की ओर बढ़ जाता है।

जब चंपा में अजीतरथ को इसकी जानकारी मिली, तो एक बड़ी सेना भेजकर उसने श्रीपाल की सेना को रोकना चाहता है लेकिन सैन्य कलाओं में प्रवीण श्रीपाल को हराना संभव ही कहाँ था। श्रीपाल की सेनाओं के साथ तीन स्थालों पर लड़ाइयां चलीं और आखिर में अजीतरथ की हार हुई। इस हार से लज्जित हो उसने संन्यास ले लिया। विशाल सेना का छत्रपति श्रीपाल का साम्राज्य विंध्य की घाटियों से लेकर हिमालय तक विस्तृत था । इसका उल्लेख इतिहासकार ज्योतिषचंद्र शर्मा ने भी अपनी पुस्तक 'प्राचीन चंपा' में किया है।

सँकरात : मकर संक्रांति को ही लोकमानस सँकरात के रूप में जानता है। यह पर्व चूँकि मकर राशि में सूर्य के प्रवेश से आता है, इसी से इसकी तिथि कभी-कभी कुछ बदलती भी रहती है लेकिन अंगप्रदेश के बालिसा नगर (बौंसी) में यह चौदह जनवरी को ही मनाया जाता है। लोकविश्वास यह भी है कि इसी दिन समुदमंथन से अमृतकुंभ बाहर निकल आया था कुंभ की प्राप्ति में जो प्रथम बार कुंभ मेला आयोजित हुआ, उसी की याद दिलाता है बौंसी का संकरात मेला, जो महीने भर के लिए चलता रहता है। हालांकि अब इस सँकरात मेले का वह रूप नहीं रह गया है लकिन इस अवसर पर जिस तरह जनजातीय और वैष्णवों का जुड़ाव होता है—वह किसी भव्य अतीत की निःसंदेह स्मृति करा देता है। इस अवसर पर लोग बहुत नेम-नियम से स्नान-पूजापाठ के बाद दही-चूड़ा और तिल से बनी मिठाई ग्रहण करते हैं। चूँकि सँकरात में तिल की प्रधानता होती है, इसी से अंगप्रदेश में यह तिलसँकरात के नाम से भी जाना जाता है।

सतैसा : नक्षत्रों में सतैसा भी एक नक्षत्र छै और इस नक्षत्र में जन्म

लेनेवाला शिशु माँ और पिता के लिए विपत्ति का कारक होता है, ऐसी लोकमान्यता है; इसी से ऐसे शिशु की छट्ठी सत्ताइस रोजों के बाद ही मनाई जाती है। निश्चित समय के बाद सताइस कुँओं का पानी, सत्ताइस जगहों की माँटी, सत्ताइस किसिम की लकड़ियाँ, सत्ताइस किसिम के कपड़े मँगाये जाते हैं, फिर उन्हीं मिट्टियों से बेदी; वेदी पर उन कपड़ों की झंडियां गाड़ी जाती हैं और होम किया जाता है। फिर एक बड़ी थाली (परात) में सरसों तेल भरकर उसमें उस शिशु की पड़ी परछाई पिता को दिखाई जाती है। इस तरह सतैसा नक्षत्र के दोष से मुक्ति मिलती है ।

समुखिया मेला : बाँका जिले की झरना पहाड़ी के नीचे मकर संक्राति पर लगनेवाला मेला समुखिया मेला के नाम से ही लोक में प्रसिद्ध है। इस मेले की लोकप्रियता का कारण पहाड़ी के नीचे का गर्म कुंड है। ठंडे के समय में इसमें स्नान का अलग ही आनंद होता है—इसी से मकर संक्राति के अवसर पर लगनेवाले समुखिया मेले में आसपास के कई जिलों के मक्तों का जुटाव होता है। यहाँ लोगों के आने का एक कारण यह भी है कि इसी पहाड़ी पर ऋषि अष्टावक्र की साधनागुफा भी थी, जो सरकारी योजना को पूर्णता देने के क्रम में ध्वस्त हो गई है। गुफा जरूर नहीं है लेकिन पहाड़ी से अष्टावक्र के संबंध की कथा अब भी लोक में व्याप्त है।

सरहुल : भारत के अन्य प्रदेशों में फैले सरहुल पर्व अंगप्रदेश के संथाल परगना की जनजातियों का लोकप्रिय पर्व चैत शुक्ल तृतीया को नई फसल के उत्सव (जो इनके नये वर्ष के आरंभ का दिन भी है) पर मनाया जाता है। सखुए के वृक्ष-पूजन के बाद ढोल और मानर के संगीत पर जनजातियों का नृत्य और उल्लास पूरे इलाके को संगीतमय बना देता है। सरहुल एक तरह से प्रकृति-पूजा या वसंतोत्सव ही है।

सरूप महाराज : सरूप महाराज मधेपुरा के निवासी कामदेव मरड़ के

द्वितीय पुत्र थे । इनके बड़े भाई का नाम लीलाधर मरड़ था । सरूप महाराज बचपन से ही भक्तिभाव में लीन रहते—गौ-सेवा में लगे रहते, जिसके कारण सरूप मरड़ में बचपन से ही कुछ विशेष गुण का दर्शन होने लगा था । इनकी मृत्यु के संबंध में भी एक विचित्र कथा प्रचलित है कि एक बार इनकी ही बहन इनसे असमय में दूध माँगने चली आई, जिस कारण सरूप ने दूध देने में अपनी असमर्थता प्रकट की, लेकिन इस इनकार से कुपित बहन ने भाई को अकाल मृत्यु का शाप दे दिया। बहन का ऐसा शाप देना था कि एक दिन जब सरूप मरड़ अपने बथान पर सोये थे, तभी एक बाघिन उसे लाँघ कर निकल गई । इससे उनकी नींद खुल गयी और सब कुछ जानकर यह मान लिया कि उनकी मृत्यु अब बहुत निकट है, इसीसे उन्होंने अपने गाँव की ओर जानेवाले एक राहगीर को यह संदेश अपने परिवार को देने कहा कि अब सरूप की मृत्यु एकदम निकट है लेकिन जब तक राहगीर यह संदेश परिवारवालों तक पहुँचा पाता, सरूप मरड़ की मृत्यु हो गई । बाद में परिवार के लोग ही सरूप मरड़ के भगत घोषित हुए, और इस तरह सरूप मरड़ स्वरूप महाराज लोकदेव के रूप में यदुवंशियों के बीच प्रसिद्ध हुये ।

सलहेस : सलहेस दुसाध जाति के आराध्य पुरुष हैं और अंगप्रदेश के लोक देवताओं में लोरिक, गोपीचंद की तरह लोकप्रिय भी । डॉ. अभय कोत चौधरी और नरेश पाण्डेय चकोर जी के संयुक्त प्रयास से जिस संपूर्ण सलहेस लोकगाथा का प्रकाशन उन्नीस सौ अस्सी में हुआ है, उसके अनुसार राजा सलहेस पकड़िया राज (बाँका का शंभु गंज प्रखंड) के राजा थे, जिनकी शादी कम उम्र में ही हो गई थीं। बारह वर्ष के बाद जब गौने की बात उठी, तो दुराचारी कनक सिंह की समस्या उठ खड़ी हुई, जिसने उस मार्ग से जाते-आते कई दुल्हाओं की हत्या कर उनकी दुल्हिनों को अपने राजमहल में रख लिया था । गौने का संदेश लेकर पकड़िया से चला नाई कनक सिंह के इलाके में तमाशा दिखाता हुआ निकल जाता है और लौटने के समय, सलहेस की पत्नी समरी के कहने पर वह मित्र ससुर रूपाचन हजारी से काटल घोड़ी माँग लेता है,

जिस कारण वह आसानी से पकड़िया राज पहुँच जाता है।

फिर गौने के लिए सलहेस के साथ उसका छोटा भाई मोतीराम, भैगना कालीकंठ और पकिया मित्र छेछन डोम भी साथ हो जाते हैं, जो तंत्रमंत्र में पारंगत हैं, और इसी के बल पर वे सब कनक सिंह के राज को बिना बाधा के लाँघ जाते हैं लेकिन लौटते समय उनकी मुठभेड़ कनक सिंह के सिपाहियों से होती है। घेछन के मंत्र-प्रयोग के कारण घुड़मुँहा सूअर बाघ में परिवर्तित हो जाता है और सारे सैनिकों के साथ कनक सिंह भी मारा जाता है। इस तरह सलहेस बंदिनी सारी दुल्हिनों को मुक्त करा अपनी पत्नी के साथ पकड़िया लौट आते हैं।

उधर मोरंग की दो युवतियां जीरुआ और पचुआ भगवती पर दवाब बनाती हैं कि वह सलहेस को मोटंग भेजे, जिससे वे शादी करना चाहती हैं। विवश भगवती समरी के दिमाग को फेर देती है जिसके कारण वह सलहेस की इच्छा के विरुद्ध दुंदुभीपुर का मेला देखने चली जाती है। इधर इस बात से नाराज होकर सलहेस गंगा-कोशी पार कर मोरंग की ओर बढ़ने लगते हैं। इसकी जानकारी मिलते ही जिरुआ-पचुआ खुश हो जाती है लेकिन लौंगा धामिन इस बात से नाराज है। दोनों बहनें लौंगा के क्रोध की अनदेखी कर सलहेस मंत्रों का प्रयोग करती हैं लेकिन और जब सलहेस की बाँसुरी मंत्रो के असर को बेअसर कर देती है, तो भगवती चील बनकर बाँसुरी झपट ले जाती है, फिर भी सिद्ध पुरुष सलहेस उनकी इच्छा नहीं स्वीकारते। परिणामतः दोनों बहनें बाँस के एक चोंगे में सलहेस के प्राणों को बंदकर चोंगे को दुधिया पोखर में फेंक देती हैं। बाद में कालीकंठ और छेछन डोम सलहेस की खोज में मोरंग की ओर निकलते हैं। रस्ते में धामिनों के पतियों से दोनों की मुठभेड़ होती है और वे कालीकंठ-छेछन के मंत्र-प्रयोग से मारे जाते हैं। छेछन के मंत्र प्रभोग से सलहेस के प्राणों की भी रक्षा होती है लेकिन सलहेस आग्रह के बाद भी पकड़िया नहीं लौटते और विधवा हुई धामिनों की जीवन रक्षा से जीवन गुजारने का मन बना लेते हैं ।

यहाँ इस ओर संकेत कर देना आवश्यक होगा कि अंगप्रदेश के भिन्न-भिन्न अंचलों में सलहेस-संबंधी गाथा में कुछ-कुछ अंतर मिलता हैं,

जो लोककंठ में दस-बारह सौ वर्षों तक रहने के कारण स्वाभाविक भी है।

हिन्दी में सलहेस की जीवनकथा पर डॉ. अमरेन्द्र द्वारा लिखित जो उपन्यास प्राप्त होता है, वह डॉ. चौधरी और चकोर जी द्वारा संकलित लोकगाथा से बहुत साम्य रखता है।

सिमरिया मेला : बेगुसराय के सिमरिया-गंगाघाट पर कार्तिक मास के आरंभ से अंत तक लगनेवाला यह मेला अपनी कई धार्मिक कथाओं को लेकर भी प्रसिद्ध है। कहते हैं चंपा के ऋृषिशृंग ने इसी घाट पर महीने भर की साधना की थी, इसी से इस घाट का नाम श्रीगेरिया पड़ गया था और आगे चलकर श्रीगेरिया ही सिमरिया में परिवर्तित हो गया। जो हो, कार्तिक मास के आरंभ से मास के अंत तक लगनेवाले इस मेले में उत्तरी बिहार के न केवल दरभंगा, पूर्णिया, मुजफ्फरपुर के भक्त जन यहाँ कल्पवास करते हैं बल्कि नेपाल के मिथिलावासी भी यहाँ आकर धन्य होते हैं। यहाँ मास भर का रात में आकाशदीप-प्रज्ज्वलन अद्भुत दृश्य उपस्थित करता है । यह मेला सिमरिया घाट पर राजेन्द्र सेतु के नीचे लगता है। ६ नवम्बर१९९७ के हिन्दुस्तान पटना में प्रकाशित फीचर के अनुसार जयशंकर प्रसाद चंपा संस्कृति पर आधारित कहानी 'आकाशदीप' लिखने के बाद सिमरिया घाट का मेला देखने आये थे। प्रसंगवश यह भी बता देना जरूरी लग रहा है कि प्रसाद जी का जन्म देवघर (संथाल परगना) की कृपा से ही हुई, शायद इसी कारण इनका नाम जयशंकर हुआ। बाबा बासुकी की कृपा से प्राप्त जयशंकर प्रसाद के बचपन का नाम भी झारखंडी ही था इनका नामकरण भी वैद्यनाथ धाम में ही हुआ था ।(देखें हिन्दी साहित्य कोश भाग २, पृष्ठ) २०९, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी)

सोनाय महाराज : सोनाय महाराज मलाह जाति के लोकदेव हैं । इनके जन्मस्थान के संबंध में कोई निश्चित लोककथन नहीं मिलता है लेकिन मधेपुरा जिले में सोन टेकठी गाँव में इनके गहबर के साथ जागीर के होने से यही लगता है कि इस गाँव से ही इनका संबंध रहा होगा ।

इनके संबंध में एक विशेष बात यह कहीं जाती है, कि मलाह होने के बाद भी वह मवेशीपालक थे, और उनकी गाय-भैंसें पचास से अधिक जंगलों में चरा करती थीं, इसी कारण खेदन महाराज से इनकी गहरी मित्रता भी थी । कहते हैं, एक बार जब वह घर जा रहे थे, तब खेदन महाराज को ही गाय-भैंसों की रोमाही देकर गये थे—जब लौटे और अपने बथान की ओर जा रहे थे, तो रास्ते में एक साथ कई बाघों ने उनका रास्ता रोक लिया । चूँकि सोनाय महाराज को दैवी शक्ति प्राप्त थी, इसीसे उन्होंने बथान के आस-पास के जंगल के सभी बाघों को मार डाला । तब बदले के भाव से एक बाघिन का झुंड सामने आ गया और तिरिया जानकर सोनाय महाराज ने उस बाघिन पर हाथ उठाना उचित नहीं समझ कर स्वयं बथान के समीप के विशाल पीपल वृक्ष पर अपने शरीर को उत्तर-दक्षिण की दिशा में रख कर सो गये । मौका देखते ही एक बाघिन में सोनाय महाराज पर पंजे से आघात कर दिया, जिससे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो गयी । जब उनके परिवारवालों को इसकी जानकारी मिली, तो उन्होंने उनकी अंत्येष्टि क्रिया की । चूँकि वह देवांशी थे, इसीसे उनकी मृत्यु के बाद वे मलाह जाति के लोकदेव हो गये । अंगुत्तराप में सोनाय महाराज के कई स्थानों पर गहबर प्राप्त होते हैं ।

सोसिया महाराज : सोसिया महाराज जुल्हा जाति के लोकदेव हैं। लोकविश्वास है कि उजानी (नौगछिया) निवासी यदु खतवे की पुत्री मातैर देवी को दुर्वासा ऋषि के वरदान से जो पुत्र हुआ था, वही आगे चल कर सोसिया महाराज लोकदेव के रूप में प्रसिद्ध हुआ । चूँकि वह दुर्गा के अनन्य भक्त थे, इसीसे उन्हें वाक्सिद्धि की प्राप्ति हो गयी थी। इनके संबधं में अनेक चमत्कारिक कथाएं जुलाहों के बीच प्रचलित हैं, एक कथा तो मुझे भी एक जुलाहे से सुनने को मिली थी कि इनकी अलौकिक शक्ति के कारण चलती रेल पाँच हाथ जमीन में धंस कर रह गयी थी । बाद में उनकी शक्ति से उस संकट का निवारण हो सका।

सोहर : सोहर मंगलगीत है और बहुत अधिक विश्वसनीय यही है कि इसकी शाब्दिक व्युत्पत्ति 'सोरी' शब्द से हुई है । अंगिका में 'सोरी' का अर्थ प्रसूति है, इसी से प्रसूति-गृह को 'सोरी-घर' ही कहने का चलन है । यह भी संभव है कि यह शब्द 'सोहरी' का ही लाघव उच्चारण हो और 'सोहरी' की अन्तिम मात्र के लोप से 'सोहर' शब्द बन गया है । 'सोहरी' और 'सोहर' का गहरा संबंध इससे भी समझा जा सकता है कि जन्म के छठवें दिन (छठी) पर इसे गाने की प्रथा है जो, उत्सव और गायन 'सोरी घर' में ही सम्पन्न होता है ।

संभव है 'सोरी' शोर से व्युत्पन्न हो । बच्चे के जन्म के साथ उसके नन्हे कंठ के शोर के कारण ही 'शोरी घर' कहने की प्रथा चल पड़ी हो । ऐसा समझने के पीछे एक कारण यह है कि अंगिका का ही एक और शब्द है 'सारा', जिसका अर्थ 'चिता' होता है । 'सोरी घर' बच्चे के जन्म का घर है और 'सारा' मनुष्य की देह-लीला-समापन का खुला घर, 'शोर' दोनों ही जगहों में होता है । बच्चे के जन्म के साथ जो उसका शोर होता है उसी शोर के साथ स्त्रियों के कंठ से भी उल्लास और मंगल के स्वर फूट पड़ते हैं, लेकिन मृत्यु पर जो शोक का शोर होता है, वह तो बहुत ही हृदय को द्रवित करने वाला होता है, ऐसा शोर 'सोरी' नहीं, 'सारा' ही कहा जायेगा । अंगिका में ऐसे लघु-गुरू अर्थ को व्यक्त करने के लिए अकारान्त या आकारन्त शब्द को ईकारान्त में बदलने की प्रवृत्ति प्रमुखता से पाई जाती है । इसके पीछे न केवल लघु-गुरू का भाव प्राप्त करना रहता है, बल्कि उसमें विशिष्ट अर्थ का भी समावेश हो जाता है ।

सोहराय : अंग प्रदेश के पठारी इलाकों का प्रमुख जनजातीय पर्व । संथाली भाषा और संस्कृति के विद्वान डॉ. डोमन साहु समीर ने एक बार मुझसे कहा था कि सोहराय मवेशियों के संरक्षण-भाव से जुड़ा जनजातीय उत्सव है। जिस तरह सनातनी दीवाली पर्व पाँच रोजों, धनतेरस से लेकर गोबर्द्धन पूजा तक चलता है—उसी तरह सोहराय ईश्वर पूजा से लेकर पाँचवे दिन संग्रहित अनाज के सहभोज से समाप्त

होता है, जो गाँव के किसी खुले पवित्र स्थल पर होता है। इसमें गाय-बैल की पूजा भी प्रमुख अंग है जो पूजा पर्व के तीसरे दिन संपन्न होती है। मवेशियों की गर्दनों में धानयुक्त सहेलियों की माला डालना, खूरों की पूजा करना—इस पूजा के अंग होते हैं।

स्वांग : लोकनाट्य का सबसे प्राचीनतम रूप स्वांग है, जिसका प्राचीनतम उल्लेख अंगजनपद के विक्रमशील विश्वविद्यालय के सिद्ध साहित्य में मिलता है । 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास' (पृ. ५०) में डॉ. दशरथ ओझा लिखते हैं कि जननाटक की प्रस्तुत शैलियों में स्वांग नाटक एक विशेष स्थान रखते हैं । स्वांग नाटक हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के साथ-साथ ही जनता के सामने आ गए होंगे । हिन्दी साहित्य में स्वांग से प्राचीनतर नाटक का उल्लेख शायद ही कहीं मिले। सिद्ध कण्हपा विक्रम की नवीं शताब्दी में विद्यमान थे । उन्होंने डोमिनी के आह्वान-गीत में स्वांग का उल्लेख इस प्रकार किया है,

नगर बाहिरे डोंगी तोहारि कुड़िया छइ छोइ जाइ सो ब्राह्म नाड़िया ।।
आलो डोंबि! तोए सम करिबय सांग निघिण कणह कपाली जोइ लाग।।
एक सो पदमा चौषट्ठि पाखुड़ि तेहि चढ़ि नाचअ डोंगी वापुड़ी ।।

यह उद्धरण वज्रयानियों की योगतंत्र-साधना से सम्बन्ध रखता है। इस साधना में डोमिनी आदि का अबाध सेवन एक आवश्यक अंग माना जाता है । डोमिनी के साथ स्वांग करने का आह्वान उस काल की स्वांग-शैली को प्रमाणित करता है । डोमनियों के स्वांग का प्रचार आज भी उत्तर भारत में प्रचलत है ।

हरदीगढ़ : सुपौल (मधेपुरा) का प्रसिद्ध स्थान, जहाँ लोकदेव लोरिक के प्राचीन दुर्ग का अवशेष विद्यमान है । इसका उल्लेख डॉ. लक्ष्मी प्रसाद श्रीवास्तव ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'यादुवंशीय लोकदेव लोरिक और लोरिकायन' में किया है ।

हरिमल : अंगिका लघु लोकगाथा का नायक, जिसकी रानी के प्रति

राजा हरिमल का भाँजा ही आसक्त है लेकिन रानी की अनासक्ति देखकर भाँजा छल का सहारा लेता है। वह सोचता है, अगर वह मामा की हत्या कर देता है, तो विवश होकर मामी उससे विवाह कर लेगी और ऐसा वह करता है। अपने पति की मृत्यु की खबर और भाँजे की नीयत को समझती हुई रानी अपने पति का शव लिए चिता पर जल जाती है। लोकगाथा में हरिमल की प्रमुखता गाथा के हर एक चरण के बाद के चरण के अंत में आए नाम के कारण ही है।

हरेबा-परेबा : लोरिक लोकगाथा से इन दो बलिष्ठ और दुर्दान्त राजाओं के बारे में पता चलता है, जो सगे भाई थे । लोरिक से युद्ध के क्रम में दोनों दुर्दान्त भाई मारे गये थे ।

हिजला मेला : संथाल परगना के दुमका जिले की हिजला पहाड़ी के समीप लगानेवाला जनजातियों का प्रसिद्ध मेला, जो फरबरी से आरंभ होकर महीने भर के लिए कायम रहता है। इस मेले का आरंभ अठारह सौ नब्बे इसवी में तत्कालीन अंग्रेज जिलाधिकारी जॉन आर. कास्टेयर्स के प्रयास से हुआ था, जिसका नाम बदल कर उन्नीस सौ पचहत्तर ईसवी में तत्कालीन आयुक्त जी. आर. पटवर्द्धन ने जनजातीय हिजला मेला कर दिया। अब यह मेला राजकीय हिजला मेला हो गया है। मेले में जनजातीय संस्कृत्ति और स्थापत्य का अद्भुत प्रदर्शन होता है।

हिरनी-बिरनी : हिरनी-बिरनी अंगिका लोकगाथा 'हिरनी-बिरनी' की नट नायिकाएं हैं । डॉ. मृदुला शुक्ला के हिन्दी उपन्यास को पढ़ने से जान पड़ता है कि ये बहनें झारखंड के राजमहल के आसपास की थीं, जिन्होंने अपने जाति में अपने अनुकूल वर न पाने के कारण यह प्रतिज्ञा ली थी कि जो उसके मोहना भैंसा को नाथ सकेगा, उसी से दोनों बहनें ब्याह करेंगी और इस कारण वे बाँका होती हुई तारापुर पहुँचती हैं, जहाँ कई पहलवान भैंसा को नाथने का प्रयास करते हैं लेकिन हार जाते हैं और यही बात मुंगेर के पहलवानों के साथ भी होती है। निराश दोनों

बहनें गंगा-कोशी नदियों को पार करतीं मधेपुरा पहुँच जाती हैं और वहाँ के पहलवानों को भैंसा नाथने की चुनौती देती हैं। चुनौती को अखाड़े का गुरु स्वीकार करता है और झपट कर भैंसा की पूँछ पकड़ लेता है लेकिन तभी दोनों बहनें भैंसे के करीब पहुंचती हैं और उसके नथुने के आगे सात जादूवाली पोटली कर देती हैं जिसके कारण वह अखाड़े के गुरु को उठाकर पटक देता है। यह देखकर पोषण सिंह, जो जाति से क्षत्रिय है भैंसे को नाथने आगे आता है और उसके सींगों को पकड़कर पीठ के बल गिरा देता है। तभी पोषण की नजर सामने के कुश की एक घडी पर पड़ती है और वह उसी छडी के सहारे भैंसे अपने जनेऊ से ही नाथ देता है इस तरह दोनों नट युवतियों से उसका विवाह हो जाता है लेकिन इस कारण वह जाति बहिष्कृत भी हो जाता है। आगे की कथा से पता चलता है कि हिरनी से दो और बिरनी से तीन पुत्रों की प्राप्ति पोषण सिंह को होती है और अपने पुत्रों का विवाह वह अपनी जाति-युवतियों के साथ ही करता है। डॉ. प्रदीप प्रभात ने हिरनी-बिरनी लोकगाथा का संकलन किया है जो प्रकाशित है।

त्रिमुहान : भागलपुर के कहलगाँव से लगभग पाँच किलोमीटर दक्षिण में त्रिमुहान नदियों का संगम-स्थाल है, जहाँ गेरुआ और मैना नामक नदियाँ गंगा से मिलती हैं और यहीं से गंगा फिर उत्तरवाहिनी होकर बटेश्वरनाथ की ओर बहती है। इसी कारण इस संगम को प्रमुख तीर्थस्थल का मान प्राप्त है।

■■

अंग लिपि में 'शबरी' खंडकाव्य

लिपिकार : श्रीराम प्रसाद पंजियारा

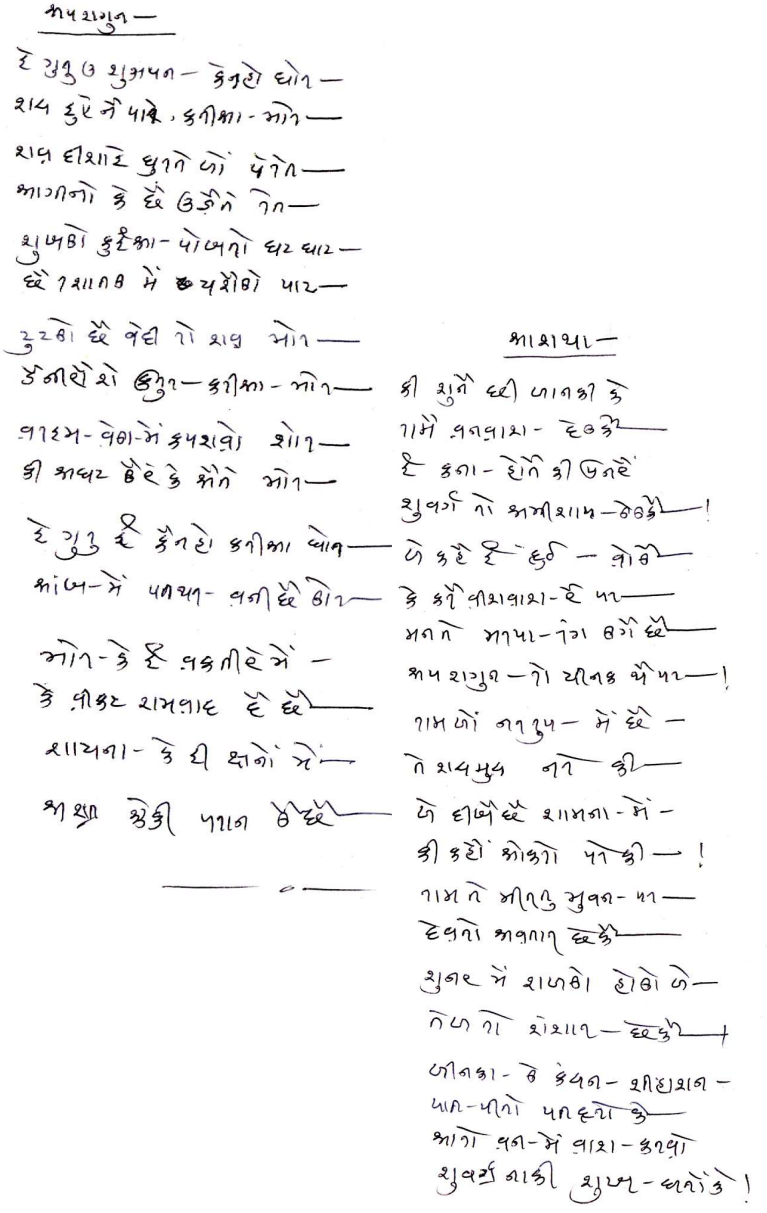

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

દુખ કો દૂર કરૈ પ્રભા કી-
શુદ્ધ કે હી કીરત-પુર રૈ
દેવતા કે જે હૈ દુરાત્મા-
આર ઘરી પલ-પરાજા-પુરૈ ।

દીરાર અનુ રાવ પદીઠકો
રામ પ્રભુ વાસી - હૈ શમમુખ-
ઉપરૈ હૈ રાવણી કે સુખરા-
બાંશઠે પાર ભારાનગી નો દુખ ।

વોઢી રાવણી મનેમન-
રામ નો અવતાર હૈકો-
સુબર પત્ર રાવણો હોવી-
અપુપ-કે શંશાર-હૈકો ।

મોત-નૈં માનૈ હૈ હમનો
હમને ગોડો કે પરશ-શો
શુચ હોવૈ રૈ રાનો રાજ-
જે દુશીત- રાજો પરશ રો ।

રામ-નો આપને પ્રાણ રો
શુચ ઉરઠો દૂધી પઠકે-
ખોડ્યો હમનો કથા-રો-
કીરતી પરશ-આપનો વીમઠ-રો ।

યુદ્ધ પ્રાણો કે નોનો કી -
રીરીરાવી ભાર રૈ પ્રાણ-બાંધો
શુચ-હમના-રો રાનો ઉર-
પ્રાણ-રૈનૈ મોત- માંકો ।

રામ નોનો વતીત-શુનવૈ
કે રહાં નૈ મુકત-હોવૈ
મુખી મેં શુભ-રાવણ કે
ભારકો હૈ રોવૈ ।

આર રાવણ નૈ ઉઠોં હૈ
બાનગી નો રનરાશ-કે શુભ-
રામ નોનો દશાને- તે
મોક્ષ રૈંગ-કૈઠારા-કે શુભ ।

દુખ-વધી દીન-દુરા હૈ
જે ઘના- કી પુબર ઝરીવત-
મુની મતંગારીની રૈ કરઠકુ
રામ રેખો નોનો કુરી પર ।

પરશ-વર્ષ દીન રો તે હમમેં
રૈ પરીક્ષા- મેં હી હૈઠા-
કુદ્ધ કહાં હમના-પના-હૈ
કોને કી દેઠકુ-ર કી હોવા ।

રામ હમનો દુત્કાર-પત્ર દ્યો
દેવતા-નો શુવર્ગ શીકરા
આર મારી ભાઠ-પત્ર હૈ
મુકતી કે નો નોઠક રીકરા ।

ગામ હમેં શહર નગર—
ભર નેં હમરા—કોનો કુછ—
દૈત માનવ અસુર—આસુર—
દાસ—ગાસ—આગુ પીછવો।

હર કીશીમ કે શંકયો છે—
તીરકે શહ કથા—ખાબેં—
પર જગુન—હીનં પડ઼છૈ
યનુશ—કે કી કભીસો નાબેં—।

શહ વિપદ છે ગાન રંગ—
જે વનૈ છે ગાખછે છી—
મીરતુ કેરો જે નગાશા—
હુઈ કુછનૈ માખછે છી—।

રે મરાનક ઠી વનોં મેં—
ડોગ તે ઠાગ કે કૌ છૈ—
ગાત કો ગુજ ગુજ—આનટરીશ—
આંખ—ગાકશ—તો ખૌ છૈ।

ગાન જે કગ—પાસે છેઠી—
ગાવનો કે મોન છેછે,
છે દશાનન—ભેષ આપનો—
રે ગીસ—આગી ઘમકેછે।

પર હૈ રે છે ડોર—ભરકે
છી આડીગ—આપનો ચારમપર—
ગામ તોનો મકતી પરખોટે
ઓતને આપનો કામપર—।

હમમુ ચોખા—ખાર ગેઠીરૈ
દશ મુંહે સચમુચ છીકે કી—
હાર હોરૈ કે ક મારા—
હુઈ કરીઓંરા—હાથૈ કી—।

ખાબકી કે હગન—શુનઠર—
મે પામુ કુછ તીર દેન્છે—
છી વુતૈ છે જે કહું નૈ—
ગાવનો હુગ—છૈનૈ જેનહેં।

ભેશ—કોશરો કમો વહછે—
આપાન કેના—વહછતૈ—
હાવો ભાવો શ તુગત—
ભેદ ઓકગો તે નીકછતૈ—।

શાંનતી કે વીન કાને જે—
ભંગ યાહે છૈ કૌ છે—
ઓકગા—શાનકર્મ હાથે—
ઠાગતૈ નીશચીન—મૌરછે—।

बाघ शोभै छै नीकेँ
जे दया- ममता- मैत्री- छै
ओकरे रक्षा- में तत्पर-
निडर घर- दीकठो जे शानछै।

पाप के शीर पाप लेचे-
ते जतो या पाप की छै
जो आकाश पताल छै
पाप अतीशर के छै वीछै।

जे नीछि के राजठ छी-
राम तोरो नाम- आरपीन-
नारीरक्षा- छे जे उदयान-
नाम- ओकरो छै शमरपीन-।

जो कठौते काम आवे-
ते शामदको श्राम शाकठ छै
हे नरोत्तम- राम जानो
तोरा- मैं ते आर कठ छै।

जुग पुरुश हे राम नरपती-
छो जना- केवठ शिलाठे
कैकरो नै पैठा- हेनो
मानवता- शनमुख में पीनीआठे।

जनीआ- के हरयो हरयो-
जंगठो के जाक छालो
उ पानीआ- शये सुहागन-
शुआमी जेकरा- हेनो मानै-।

राम तोरो हे पतीन- शी
जे कोशल- पुठकीन- यारा- छैरे
कठ जना- शान दुआ- जे औरे
तोरे होते आशरा- छै।

नारी के शममान- देठी-
जे वीकठ- उ राम छेकै
एक पतनीव्रत- नीयम पर-
जे आरठ- उ राम छेकै।

जे हीनदर पतानेशावनी में-
छे आरठी उ राम छेकै
नारीओ नां जो हुए जोरे
ओंख- छठमठ राम छेकै।

राम तोरो शीठ आगु-
की छै कुछुओ
राम तोरो नीठ आगु-
की छै कुछुओ- ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

રાવણ ચુકે, પણ જ્ઞાન-પોથી
રૈને ચુકનો —
બચ્ચા કે પહીલે કુહુંગી —
રૈને ચુકનો — ।

પાથોના કે જીતનો નકુ —
ધાર લેંગે —
નોક ધુશાયેં નીલ મીલાકે
ગીનીઓ રૈને — ।

રામ નોને વાશાયે હમેં ખોગેં —
પુનરનો રૈ પાંચ કુલ ધ્યાનીકોગે —

અનર ધોનો —
પુનર હમનિ —
ખો અંગ નો —
પાપ ખાનના - ધૂંએ ચંના-પન —
રાવ ખંનો —

રામ નોનો કીનારે દશ —
શુગ્ન ધ્રુકે —

જે હેનો વેકલ - પીનીઓ —
દશના - ઓ
શુગ્ન ગ્રશાન કીકેનોં કી
કુરીલ રાહુ —

શુગ્ન વનશ્ન રામ નોને —
પુર્ન શ્રશ્ન —
જે નોના શાનુ વનેં ધ્રુ
ઓ નાના ચમ —

રૈનદ્ર કે દેલો હોલો જો
ચનુશ - ચાનો —
શુગ્ન નોંકી ગ્રાન લેં કુ —
ખલ શંધાનો —

નાની હાનેરા - દશાનન —
યુવશ્ન - ધોનો —
રાવર્ન ઇંકા - કે કીનીનકો
અશાન - હોનો —

દખી નહલો ધ્રી શાંગશો
ખુબ ગાશો —
જે ગીનેં ધ્રુ ગાલના પર —
મીનનુ શાનશો —

રકન - ંચીન - રાવર્ન ઇંકા -
જો પધારો —
કાલ કેનો એકલો જા —
નીકુર - પાશો —

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अन्तर आलाप

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

વેરી દેશીરે વણજારે કી —
ભાગી કે રહી વનો મેરે —
હામય - દે દો આગિનકો —
કી નેં ઊઠી હૈ મકો મેં —

ઓ ઘાને નેં ઘોર - વનકો —
એક નીનીકા - કે કહું રી —
ને વને કે કી ભાગોશી —
ઉજા - વડારે કે વહુ રો — ।

હાર હમારો દુઃખ - રો કુછુવો —
કમાને નો મે દે પાનકુરી કે —
રાવ નીનીકા - કે ભાગર એક —
કે કહાં પુરા દે, ખુશી કુરે ?

ઉજા - આંખી - કે વહેનો —
કારે દે અપનો ઊંમીદ કુરે —
ઘોર - વનદીગૂહ ઠગે ને —
ઘોર - કેગા - કહનો ઘાર કે — ।

હમને રાથેં કી નેં હોવે —
વાક રો દુખની હોવો દી —
વશ રહી વે કી નીનીકા - નો —
ઓ ગુને રો હી ઓવો રી —

નીકાગા - રોવા - રાવ નીનીકા - વે —
નાગીર રાવકે ખુશ્યો વે —
ભાગો દે દે રાનારોરી ભાગ મેં —
ખગમગી દે રાવ કુખ્યો વે — ।

ઓક કે ભાગ - વ્યો ને —
ને રહું વી નાગીર રી —
ઘોર કે વશામો નીમોનો —
ને રહું વી નાગીર રી —

રાવને ઓ મર દોખોર —
ને વહુ ભી - નાગીર કુરે —
આગો પની વણવાશ - દેનો
ને વહુ ભી - નાગીર કુરે —

ઓછનો ઓ પુરુશ - કેગો —
ભાગાને ને નાગીર પર —
કી વ્યોરો - નામ - નોગ —
નાગી ઝીવન - ગાગીર પર —

રાદ હોયો ભગ ખબની —
હાથ જોડી કે કહતીસો —
નાગી હમેં હીન કુછ રો
ઓઠો દી: કુરો કહતીસો — (

ને નોરી ની કહતે દેવી —
ખકની રો કોરિરો ને ઉભો —
ઓ વહે પુનલલ આકી —
આ રેનુ નાગીલ છુવંદો ।

પાનકી ને નીકાગા - ખકની —
કે રાનોવા રીનચુ દેવું —

डॉ. अमरेन्द्र : एक परिचय

■ काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना की विधाओं में अब तक सत्तर से अधिक पुस्तकों का सृजन ।

■ तीन दर्जन से अधिक प्रसारित रेडियो नाटक की पांडुलिपियाँ इधर-उधर पड़ी हुई।

■ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तक और ग्रन्थों में दर्जनों लेखों का प्रकाशन।

■ सम्प्रति : वैखरी (हिन्दी), पुरबा (अंगिका) पत्रिकाओं का सम्पादन ।

■ सम्पर्क : लाल खां दरगाह लेन, सराय भागलपुर–८१२००२ (बिहार) ।
मो. ८३४०६५०६७९, ९९३९४५१३२३
ई–मेल : dramrendra.ang@gmail.com
website : www.dramrendra.com